# KÂRIKÂVALÎ

OF

## VISHWANÂTH NYÂYAPANCHÂNAN BHATTA.

WITH THE KANTHÂBHARAṆA COMMENTARY.

---

श्रीविश्वनाथन्यायपञ्चाननभट्टाचार्यप्रणीता

# कारिकावली ।

श्रीदेवीसहायमिश्रविरचित-

## कण्ठाभरणसहिता ।

---

[illegible]त्युपाह्वगङ्गाधरभ[illegible]हादेवशर्मणा संशोधिता ।

[illegible]

सा च

मुम्बय्यां

पाण्डुरङ्ग जावजी श्रेष्ठिना स्वीये निर्णयसागराख्यमुद्रणयन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

---

शकाब्दाः १८५०, खिस्ताब्दाः १९२८.

---

मूल्यं रूप्यकार्धम् ।

# KÂRIKÂVALÎ

OF

## VISHWANÂTH NYÂYAPANCHÂNAN BHATTA.

WITH THE KANTHÂBHARAṆA COMMENTARY.

---

श्रीविश्वनाथन्यायपञ्चाननभट्टाचार्यप्रणीता

# कारिकावली ।

श्रीदेवीसहायमिश्रविरचित-

## कण्ठाभरणसहिता ।

[illegible]त्युपाह्वगङ्गाधरभ[illegible]हादेवशर्मणा संशोधिता ।

सा च

मुम्बय्यां

पाण्डुरङ्ग जावजी श्रेष्ठिना स्वीये निर्णयसागराख्यमुद्रणयन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

शकाब्दाः १८५०, खिस्ताब्दाः १९२८.

मूल्यं रूप्यकार्धम् ।

PUBLISHER:-Pandurang Jawaji, } at the 'NirnayaSagar' Press,
PRINTER:-Ramchandra Yesu Shedge, } 26-28, Kolbhat Lane, Bombay.

# निवेदनम् ।

नमः श्री ६ गुरुचरणारविन्दाभ्याम् ।

अथोपक्रम्यते कण्ठाभरणाख्यव्याख्यायुता न्यायकारिकावली मुद्रयित्वा प्रकाशयितुम् ।

कर्ता चास्याष्टीकाया लवपुरवास्तव्यो डिंगणजातीयः पण्डितदेवीसहायमिश्रः । अनेन विदुषेयं व्याख्या प्रथममेव मुक्तावलीग्रहणासमर्थानां सुकुमारमतीनां बालानां कृते मुक्तावलित एव न्यायप्रमेयाण्युपादाय सुगमतरैर्वाक्यैर्विशदीकृत्याधिकेनाप्यपेक्षितेनार्थेनापूर्या रचितेत्येतत्कण्ठाभरणं बिभ्रतो बाला अवश्यं मुक्तावलीग्रहणसमर्था भवेयुरित्यस्माकं निश्चयः । अयं च टीकाकृद्विवनशैलीतो दर्शनग्रन्थेषु कृतश्रम इत्यवगम्यते । नव्यन्यायेऽस्य [illegible] ...चय [illegible] व्याप्तिः साध्यवदन्यस्मिन्नसम्बन्ध उदाहृतः' इति [illegible]रिकाव्या[illegible]ख्यावसरे—'साध्यं वह्न्यादिस्तद्वान् पक्षः सपक्षश्च तदन्यस्मिन्साध्याभाववति विपक्षे असंबन्धो हेतोरवृत्तित्वं व्याप्तिः साध्याभाववदवृत्तित्वं व्याप्तिः' इति, तथा 'ननु तथाप्यव्याप्तिः, संयोगेन वह्नित्वेन च वह्न्यभाववति धूमावयवे समवायेन धूमस्य वृत्तेरितिचेन्न, वृत्तित्वनिष्ठाभावप्रतियोगितायाः हेतुतावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नत्वस्याभिप्रेतत्वात्' इत्यादिबहुतरप्रमाददर्शनात्प्रतीयते । तथापि तावतास्य ग्रन्थस्य सौष्ठवमुपयोगिता वा नाणुमात्रेणाप्यहीयतेत्यस्माकं मतिः । येचात्र प्रमादागता दोषा विदितास्ते

सर्वेऽप्यवहितेन मनसा शोधनं कुर्वता मया मार्जिता एव। एवमपि क्वचिदवशिष्टं दोषं विद्वांसो यदि पश्येयुस्तदा परिशोध्य पाठयेयुरिति विज्ञापयति—

वाकेइत्युपाह्वो गङ्गाधरभट्टसुतो
महादेवशर्मा.

---

अस्याः कण्ठाभरणटीकाया लिखितमेकं पुस्तकं डॉ० रामजी धोंडजी खानवलकरैः स्वसंग्रहान्मुद्रणाय स्वत्वनिवृत्तिपूर्वकं प्रीत्या दत्तमिति तेषामुपकृतिमभीक्ष्णं स्मरामः—

निर्णयसागराधिपः.

---

लिखितपुस्तकस्थं लेखकनामादि.

संवत् १८८७ आषाढशुक्लद्वादशी वार[illegible]ुक्रवारे लिखितं देवीदआल का[illegible] शाकीनकरवदी ताल्लुके चीतरपुर दुरगाजी[illegible]न आधा [illegible]।

मुद्रणाय लिखतः [illegible]ज्ञादि.

जडयेइत्युपनामकरघुनाथात्मजहरिरितिख्यातः ॥
तेन विदा लिखितमिदं महाप्रयासेन पुस्तकं शुद्धम् ॥

# विषयानुक्रमः ।


| विषयः | पत्रम् |
|---|---|
| मङ्गलम् ... ... ... | १ |
| पदार्थविभागः ... ... | २ |
| द्रव्याणि ... ... ... | ३ |
| गुणाः ... ... ... | ४ |
| कर्माणि ... ... ... | ५ |
| सामान्यम् ... ... ... | ५ |
| विशेषाः ... ... ... | ६ |
| समवायः ... ... ... | ६ |
| अभावः ... ... ... | ७ |
| सप्तानां पदार्थानां साधर्म्यम् | ९ |
| द्रव्यादीनां पञ्चानां साधर्म्यम् | ,, |
| द्रव्यगुणकर्मणां साधर्म्यम् ... | ,, |
| [illegible]णादीनां षण्णां साधर्म्यम् ... | [illegible] |
| [illegible]नां चतुर्णां साधर्म्यम् | [illegible] |
| [illegible]तजल[illegible]नां पदार्थानां साध[illegible] ... | ,, |
| कारणत्वलक्षणम् ... ... | ,, |
| कारणविभागः ... ... | ११ |
| समवायिकारणलक्षणम् ... | ,, |
| असमवायिकारणलक्ष० ... | ,, |
| निमित्तकारणलक्षणम् ... | १२ |
| प्रथम-द्वित[illegible]-तृतीयाऽन्यथासिद्धीन[illegible] लक्षणानि ... | ,, |
| चतुर्थ-पञ्चमान्यथासिद्धिलक्षणे ... ... ... | १३ |
| पञ्चानामन्यथासिद्धीनामुदाहरणानि ... ... | १३ |
| द्रव्याणां साधर्म्यम्... ... | १४ |
| गुणकर्मणोः साधर्म्यम् ... | ,, |
| नित्यद्रव्यभिन्नानां साधर्म्यम् | १५ |
| द्रव्याणां नवानां साधर्म्यम् | ,, |
| क्षित्यादीनां चतुर्णां मनसश्च सा० | ,, |
| कालखात्मदिशां साधर्म्यम् | ,, |
| क्षित्यादीनां पञ्चानां साध० | ,, |
| पृथिव्यादीनां चतुर्णां साधर्म्यम् | १६ |
| आकाशात्मनोः साधर्म्यम् ... | ,, |
| पृथिवीजलतेजसां साधर्म्यम् | ,, |
| पृथिवीजलयोः साधर्म्यम् | ,, |
| पृथिवीतेजसोः साधर्म्यम् ... | ,, |
| आत्मनः पृथिव्यादिपञ्चानां च साधर्म्यम् ... ... | ,, |
| वैधर्म्यम् ... ... ... | ,, |
| वायोर्गुणाः ... ... ... | १७ |
| तेजोगुणाः ... ... ... | ,, |
| जलस्य गुणाः ... ... | ,, |
| पृथिव्या गुणाः ... ... | ,, |
| आत्मगुणाः ... ... ... | ,, |
| कालदिशोर्गुणाः ... ... | ,, |
| आकाशगुणाः ... ... | ,, |
| ईश्वरगुणाः ... ... ... | ,, |

| विषयः | पत्रम् |
|---|---|
| मनोगुणाः ... ... ... | १८ |
| पृथिवीनिरूपणम् ... ... | ,, |
| जलनिरूपणम् ... ... | २० |
| तेजोनिरूपणम् ... ... | २१ |
| वायुनिरूपणम् ... ... | २२ |
| आकाशनिरू० ... ... | २३ |
| कालनिरूपणम् ... ... | २४ |
| कालोपाधयः ... ... | २५ |
| दिङ्निरूपणम् ... ... | ,, |
| दिगुपाधयः ... ... ... | २६ |
| आत्मनिरूपणम् ... ... | ,, |
| शरीरात्मवादनिरासः ... | २७ |
| इन्द्रियात्मवादनिरासः ... | ,, |
| मनआत्मवादनिरासः ... | ,, |
| आत्मनः प्रत्यक्षे प्रयोजकम्... | २८ |
| आत्मनो मनोमात्रग्राह्यत्वम् | ,, |
| बुद्धिद्वैविध्यम् ... ... | २९ |
| अनुभवस्य चतुर्विधत्वम् ... | ,, |
| प्रत्यक्षस्य षड्विधत्वम् ... | ,, |
| घ्राणेन्द्रियस्य विषयः ... | ,, |
| रसनेन्द्रियस्य विषयः ... | ,, |
| श्रोत्रस्य विषयः ... ... | ,, |
| चक्षुरिन्द्रियविषयाः ... | ३० |
| चाक्षुषज्ञाने सहकारिणौ ... | ,, |
| त्वगिन्द्रियविषयाः ... ... | ,, |
| बहिर्द्रव्यप्रत्यक्षकारणम् ... | ३१ |
| ज्ञानसामान्ये कारणम् ... | ,, |
| मनसो विषयाः ... ... | ,, |

| विषयः | पत्रम् |
|---|---|
| निर्विकल्पकज्ञानस्यातीन्द्रियत्वम् ... ... ... | ३१ |
| प्रत्यक्षमात्रे करणं तद्व्यापारस्तद्विभागश्च ... ... | ३२ |
| षड्विधसंनिकर्षोदाहरणानि ... | ,, |
| योग्यानुपलब्धिरभावप्रत्यक्षे सहकारिणी ... ... | ३४ |
| समवायग्रहे सन्निकर्षः ... | ,, |
| अलौकिकसंनिकर्षत्रैविध्यम् | ३५ |
| सामान्यलक्षणा प्रत्यासत्तिः | ,, |
| ज्ञानलक्षणा प्रत्यासत्तिः ... | ३६ |
| योगिप्रत्यक्षे योगजधर्मः प्रत्यासत्तिः ... ... | ,, |
| अनुमानलक्षणम् ... ... | ,, |
| ज्ञायमानलिङ्गस्यानुमितिकरणत्वदूषणम् ... ... | ३[illegible] |
| परामर्शलक्षणम् ... | [illegible] |
| पू[illegible] व्याप्तिः | [illegible] |
| सिद्धान्तव्या[illegible] ... ... | ३८ |
| पक्षता ... ... ... | ३९ |
| टीकायामवयवलक्षणानि ... | ४० |
| हेत्वाभासविभागः ... ... | ४१ |
| सव्यभिचारविभागः ... | ,, |
| साधारणलक्षणम् ... ... | ,, |
| असाधारणलक्षणम् ... | ,, |
| अनुपसंहारिलक्षणम् ... | ,, |
| विरुद्धलक्षणम् ... ... | ,, |
| असिद्धिविभागः ... ... | ४२ |

| विषयः | पत्रम् |
|---|---|
| आश्रयासिद्धिलक्षणम् ... | ४२ |
| स्वरूपासिद्धिलक्ष० ... ... | ,, |
| व्याप्यत्वासिद्धिल० ... ... | ,, |
| सत्प्रतिपक्षल० ... ... | ४३ |
| बाधलक्षणम् ... ... | ,, |
| उपमाननिरूपणम् ... ... | ४४ |
| शाब्दबोधे करणादि ... | ,, |
| टी० शक्तिग्राहकाणि ... | ४५ |
| लक्षणा ... ... ... | ,, |
| शाब्दबोधे सहकारीणि ... | ,, |
| आसत्तिलक्षणम् ... ... | ४६ |
| योग्यताल० ... ... ... | ,, |
| आकाङ्क्षालक्षणम् ... ... | ,, |
| तात्पर्यलक्षणम् ... ... | ४७ |
| मनोनिरूपणम् ... ... | ,, |
| गुणनिरूपणम् ... ... | ४८ |
| [illegible] ... ... ... | ,, |
| [illegible] ... | ,, |
| मूर्तामूर्तगुणाः [illegible] ... | ,, |
| अनेकाश्रितगुणाः ... ... | ४९ |
| एकैकवृत्तिगुणाः ... ... | ,, |
| विशेषगुणाः ... ... ... | ,, |
| सामान्यगुणाः ... ... | ,, |
| द्वीन्द्रियग्राह्या गुणाः ... | ,, |
| बाह्यैकेन्द्रिय[illegible]ग्रा गु० ... | ५० |
| अकारणगुण[illegible]भा गु० ... | ,, |
| कारणगुणोद्भवा गुणाः ... | ,, |
| कर्मजा गुणाः ... ... | ,, |

| विषयः | पत्रम् |
|---|---|
| असमवायिहेतुगुणाः ... | ५१ |
| निमित्तगुणाः ... ... | ,, |
| उभयविधगुणाः ... ... | ,, |
| अव्याप्यवृत्तयो गुणाः ... | ,, |
| रूपनिरूपणम् ... ... | ५२ |
| रसनिरूपणम् ... ... | ,, |
| गन्धनिरूपणम् ... ... | ५३ |
| स्पर्शनिरूप० ... ... | ,, |
| रूपादिचतुष्टस्य पाकजापाकजत्वे | ,, |
| पाके मतद्वयम् ... ... | ५४ |
| संख्यानिरूपणम् ... ... | ,, |
| द्वित्वादीनामनेकाश्रयत्वम् | ५५ |
| ,, ,, अपेक्षाबुद्धिनाशान्नाशः | ,, |
| अपेक्षाबुद्धिलक्षणम् ... ... | ,, |
| परिमाणनिरू० ... ... | ,, |
| परिमाणोत्पत्तित्रैविध्यम् ... | ५६ |
| संख्याजन्यस्योदाह० ... | ,, |
| परिमाणजस्योदाह० ... ... | ,, |
| प्रचयपदार्थस्तज्जन्यस्योदाहरणं च | ,, |
| परिमाणनाशसामग्रीपृथक्त्वनि० | ,, |
| पृथक्त्वस्यान्योन्याभाव-तो वैलक्षण्यम् ... ... | ५७ |
| संयोगनिरूपणम् ... ... | ,, |
| तस्य त्रैविध्यम् ... ... | ,, |
| त्रिविधस्य तस्योदाह० ... | ,, |
| कर्मजसंयोगविभागः ... | ५८ |
| विभागत्रैविध्यम् ... ... | ,, |
| विभागजविभागस्य द्वैविध्यम् | .. |

| विषयः | पत्रम् |
|---|---|
| परत्वापरत्वनिरूप० ... ... | ५९ |
| प्रमाऽप्रमात्वेन ज्ञानद्वैविध्यम् | ६० |
| अप्रमाया लक्षणं विभागश्च ... | ,, |
| विपर्ययोदाहरणम् ... ... | ,, |
| संशयोदाहरणम् ... ... | ,, |
| निश्चयलक्षणम् ... ... | ६१ |
| संशयलक्षणम् ... ... | ,, |
| संशयकारणम् ... ... | ,, |
| प्रमाप्रमयोः कारणम् ... | ,, |
| दोषोदाहरणम् ... ... | ,, |
| प्रत्यक्षे गुणः ... ... ... | ,, |
| अनुमितौ गुणः ... ... | ६२ |
| उपमितौ गुणः ... ... | ,, |
| शाब्दबोधे गुणः ... ... | ,, |
| प्रमालक्षणे ... ... ... | ,, |
| निर्विकल्पकलक्षणम् ... ... | ,, |
| प्रामाण्यस्य स्वतो ग्राह्यत्वम् | ६३ |
| व्याप्तिग्रहहेतुः ... ... | ,, |
| तर्कस्य व्यभिचारशङ्कानिवर्तकत्वम् ... ... ... | ,, |
| उपाधिलक्षणम् ... ... | ६४ |
| उपाधिलक्षणस्य निष्कर्षः ... | ,, |
| उपाधिफलम् ... ... | ६५ |
| शब्दोपमानयोः पृथक्प्रामाण्यम् ... ... ... | ६६ |
| व्याप्तेर्द्वैविध्यम् ... ... | ,, |
| व्यतिरेकव्याप्तिलक्षणम् ... | ,, |
| अर्थापत्तेरतिरिक्तप्रमाणत्वनिरासः ... ... ... | ६७ |
| सुखनिरूपणम् ... ... | ,, |
| दुःखनिरूपणम् ... ... | ,, |
| इच्छानिरूपणम्० ... ... | ,, |
| चिकीर्षानिरूपणम् ... ... | ६८ |
| द्वेषनिरूपणम् ... ... | ६९ |
| प्रयत्नत्रैविध्यम् ... ... | ,, |
| प्रवृत्तिकारणम् ... ... | ,, |
| निवृत्तिकारणम् ... ... | ७० |
| जीवनयोनियत्नः ... ... | ,, |
| गुरुत्वनिरूपणम् ... ... | ,, |
| द्र[illegible]त्वनिरूपणम् ... ... | ,, |
| स्नेहनिरूपणम् | [illegible] |
| संस्[illegible]विभागः | [illegible] |
| वेग[illegible]रूपणम् | [illegible] |
| स्थितिस्थापकनिरू० | [illegible] |
| भावनानिरूपणम् ... ... | ,, |
| धर्माधर्मनिरू० ... ... | ,, |
| शब्दनिरूपणम् ... ... | ७४ |


इति विषयानुक्रमणिका ।

श्रीविश्वनाथन्यायपञ्चाननभट्टाचार्यप्रणीता

# कारिकावली ।

## मुक्तावलीकण्ठाभरणसहिता ।

॥ ॐ नमो गणपतये ॥

नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय ॥
तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय ॥ १ ॥

प्रणम्य शोभालयकृष्णपादपद्मं मनःप्रार्थितसिद्धिहेतुम् ॥
मुक्तावलीधारणयोग्यतायै प्रब्रवीमि कण्ठाभरणं मनोज्ञम् ॥ १ ॥

अथातिविस्तृतन्यायशास्त्रमहार्णवावगाहनाक्षममतितयातिक्लिश्यतामनायासं तदवगाहनमिच्छतां तादृशव्युत्पत्तिसिद्धये शब्दतः संक्षिप्तां शास्त्रार्थरहस्यसर्वस्वसंदृब्धां कारिकावलीं निर्मिमाणो महाकारुणिकः श्रीविश्वनाथन्यायपञ्चाननभट्टाचार्यः प्रारिप्सितनिर्विघ्नपरिसमाप्तिप्रचयगमनादिफलकमिष्टदेवतानमस्कारलक्षणं मङ्गलं स्वयमाचरितं शिष्यशिक्षायै श्लोकेनोपनिबध्नाति—**नूतनेति** ॥ **तस्मै** सामान्यतः [illegible]जनप्रसिद्धाय **कृष्णाय** भगवते **नमः** प्रह्वीभावोऽस्तु । कीदृशाय कृष्णाय । **नूतनजल[illegible]रुचये** नूतनो नवीनो यो जलधरो मेघः तस्येव रुचिः शरीरशोभा [illegible] तस्मै । [illegible] जलधरपदप्रयोगेण नूतनविशेषणेन च मेघस्य जलभरितत्वं [illegible]त्वं वर्षणावश्यकत्वं च सूचयन्भगवतो वर्षाकालीनमेघवत्सान्द्रस्निग्ध[illegible]वर्णतां भक्ताभीष्टफलप्रदातृतां च द्योतयति । संतुष्टराजादितः फललाभदर्शनाद्भगवतोऽपि संतोषदशां चिन्तयन्विशिनष्टि—**गोपेति** । गोपालानां वधूट्यो मुग्धवध्वस्तासां दुकूलानि वसनानि तेषां चौराय हरणलीलाशालिने । तथा च गोपीनां रासादिक्रीडयाभीष्टं पूरितवांस्तथा तल्लीलाशालित्वविशिष्टतया चिन्तितोऽस्माकमपीष्टं पूरयत्वित्यर्थः । नन्वेतादृशलीलावतो गोपकुमारस्य किमिति नमस्कार्यत्वं, उत्कृष्टो हि नमस्क्रियते नानुत्कृष्ट इति कृष्णे मानुषत्वभ्रान्तिमतां मानुषापसदानामाशङ्कामपनिनीषुराह—**संसारेति** । संसार एव महीरुहो वृक्षः वृक्षवदुत्पत्तिविनाशशालित्वात् तस्य **बीजाय** निमित्तकारणाय । यद्यपि बीज-

वृक्षस्थले वीजपदं समवायिकारणे शक्तं तथाप्यत्र योग्यतया निमित्तकारणार्थकं बोध्यम् । जगदुत्पत्तौ परमाणूनां समवायित्वं, ईशस्य तु निमित्तत्वमिति नैयायिकसिद्धान्तात् । दृश्यते च निमित्तकारणेऽपि बीजपदप्रयोगः 'दुःखस्य बीजं पापं हि पुण्यं बीजं सुखस्य त्वि'ति । तथाच जगत्कारणे भक्तानुग्रहार्थमवधृतकलेवरे श्रीकृष्णे मनुष्यत्वभ्रान्तिर्न कार्या । तस्य चोत्कृष्टतया नमस्कार्यत्वं युक्तमेव । एतेनेश्वरसत्त्वे प्रमाणाभावात्तन्नमस्कारलक्षणं मङ्गलाचरणमयुक्तमित्यपास्तम् । 'क्षित्यङ्कुरादिकं कर्तृजन्यं कार्यत्वात्पटव'दित्यनुमानेनासदादिष्वसंभाव्यमानकृत्याश्रयतयेश्वरसिद्धेः सूचनात् । नच मङ्गलाचरणकर्तव्यतायां प्रमाणाभाव इति वाच्यम् । शिष्टाचारानुमितश्रुतेरेव तत्र मानत्वात् । नच नैष्फल्यादनाचरणं शक्यम् । अलौकिकाविगीतशिष्टाचारविषयस्य सफलत्वनियमेनोपस्थिततया समाप्तिफलकत्वोपपत्तेः । अलौकिकत्वमागमेतरप्रमाणाविषयीकृतत्वम्, अविगीतत्वं बलवदनिष्टाननुबन्धित्वं, शिष्टत्वं फलसाधनतांशे भ्रान्तिरहितत्वं, तेनभोजनादौ श्येनयागादौ व्युत्क्रमकृतदर्शादौ च न व्यभिचारः ॥ १ ॥

**द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं सविशेषकम् ॥**
**समवायस्तथाऽभावः पदार्थाः सप्त कीर्तिताः ॥ २ ॥**

अथ शिष्यावधानाय प्रतिपित्सितपदार्थानुद्दिशति—**द्रव्यं गुण इति**। द्रव्यादयः सप्त पदार्था अत्र निरूप्यन्त इति शेषः । 'संयोगापेक्षया कर्मणो नातिरिक्तत्व'मिति भूषणमतं निराकर्तुं **तथे**त्युक्तम् । यथा गुणाः पृथक्पदार्थस्तथा कर्मापीत्यर्थः । विशेष एव विशेषकं तेन सहितं **सविशेषकम्** । साहित्यं च संख्यागणनामात्रे । तेन सामान्यं चतुर्थः विशेषः पञ्चमः पदार्थ इत्यर्थः । अभावस्याधिकरणादनतिरिक्ततामभ्युपगच्छतां मीमांसकानां मतमपाकर्तुं **तथेति** । यथा समवायः पदार्थः तथाऽभावोऽपि पृथक्पदार्थस्तस्याधिकरणात्मत्वे भूतले घटो नेत्याधाराधेयभावानुपपत्तिरेकेनाऽभावेन व्यवहारोपपत्तावनन्ताधिकरणात्मत्वकल्पने गौरवापत्तिश्च स्यादिति भावः । पदस्यार्थः वाच्यः पदार्थ इति व्युत्पत्त्याऽ**भिधेयत्वं** पदार्थसामान्यलक्षणम् । **अभिधेयत्व**मभिधाविषयत्वम् । **अभिधा** चाऽस्मात्पदादयमर्थो बोध्य इतीश्वरसंकेतरूपा शक्तिः । तद्विषयत्वं च सर्वेषु पदार्थेषु वर्तते इति तल्लक्षणम् । **लक्षणं** चाव्याप्त्यतिव्याप्त्यसंभवरूपदोषत्रयशून्यधर्मविशेषः । एवं प्रमेयत्वमपि पदार्थसामान्यलक्षणं पदार्थमात्रस्येश्वरप्रमाविषयत्वात् । 'लक्ष्यैकदेशवृत्तित्वमव्याप्तिर्लक्षणस्य हि । अलक्ष्यवृत्तिता तस्य स्यादतिव्याप्तिनामिका ॥ १ ॥

लक्ष्यमात्रावृत्तितायामसंभवश्च कथ्यते ॥ कपिला शृङ्गिणी चैकशफा गौरित्युदाहृतिः ॥ २ ॥' अत्र सप्तमपदार्थस्याभावत्वकथनाद्द्रव्यादयः षड् भावपदार्था इति बोध्यम् । विभागादेव च सप्तत्वे लब्धे सप्तपदं स्पष्टार्थम् । अधिकसंख्याव्यावृत्त्यर्थं वा । नन्वधिकः पदार्थोऽस्ति न वा । आद्ये व्याघातोऽन्त्येऽप्रसक्तप्रतिषेधापत्तिरितिचेन्न । वादिभ्रान्तिपरिकल्पिताधिकपदार्थसंख्याव्यवच्छेदस्याभिप्रेतत्वात् । ननु कुतोऽधिकपदार्थाभाव इत्याशङ्क्याह—**कीर्तिता इति** । सप्तैव पदार्थाः कणादादिभिरुक्ता नान्ये इति तदनुक्तत्वादधिकपदार्थाभाव इत्यर्थः । नच प्रमाणप्रमेयेत्यादिषोडशपदार्थप्रतिपादकन्यायसूत्रविरोध इति वाच्यम् । तत्प्रतिपादितप्रमाणप्रमेयादिपदार्थानां यथायथं द्रव्यगुणादिष्वेवान्तर्भावेन विरोधाभावात् । ननु प्रतिबन्धकभावाभावयोरदाहदाहदर्शनादग्निनिष्ठोत्पत्तिविनाशशालिनी काचिच्छक्तिः कल्प्यते । तथा चन्द्रवन्मुखमिति व्यवहारकारणं सादृश्यमपि पदार्थान्तरम् । नचास्य द्रव्यादिषड्भावान्तर्भावः । द्रव्यादेः सामान्यवृत्तित्वादस्य च यथा घटत्वं नित्यं तथा पटत्वमपीति सामान्यवृत्तितया वैलक्षण्यात् । तथा चण्डालादिस्पर्शगङ्गादिस्नानाभ्यामशुद्धत्वशुद्धत्वव्यवहारादाधेये शुद्ध्यशुद्धी पदार्थान्तरं, तथेदं स्वीयमिदं परकीयमिति व्यवहारात्स्वत्वादिकमपि पदार्थान्तरम् । एवमन्यदपि तत्कथं पदार्थान्तराभाव इतिचेन्न । न तावच्छक्तिः पदार्थान्तरं प्रतिबन्धकाभावस्य कार्यमात्रं प्रति हेतुतया तदभावविशिष्टवह्नेरेव दाहोपपत्तौ तदतिरिक्तशक्तितत्प्रागभावध्वंसादिकल्पने गौरवात् । तथा सादृश्यमपि न पदार्थान्तरं किंतूपमानभिन्नत्वे सत्युपमानगतभूयोधर्मवत्त्वम् । तद्धर्मश्च क्वचिज्जातिरूपः घटसदृशः पट इत्यादौ । क्वाप्युपाधिरूपः घटत्ववन्नित्यं पटत्वमित्यादौ । तथाच चन्द्रवन्मुखं चन्द्रगताह्लादकत्वादिभूयोधर्मवन्मुखमित्यर्थः । एवं चण्डालादिस्पर्शजन्यादृष्टमेव शुद्ध्यशुद्धिपदार्थः । नचादृष्टानाश्रये कांस्यादौ भस्मादिना शुद्धिदर्शनादतिरिक्तत्वं शङ्क्यम् । भस्मादिसंयोगसमकालास्पृश्यस्पर्शाभावविशिष्टभस्मादिसंयोगध्वंसस्यैव तत्र शुद्धिपदार्थत्वात् । एवं यथेच्छविनियोज्यत्वाविनियोज्यत्वे एव स्वत्वपरकीयत्वे, तदवच्छेदके च प्रतिग्रहदायादिलब्धत्वालब्धत्व एव, इति सूक्तं पदार्थाः सप्त कीर्तिता इति ॥ २ ॥

**क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योमकालदिग्देहिनो मनः ॥**

**द्रव्याणि**

तत्र यथोद्देशं द्रव्याणि विभजते—**क्षितीति** । क्षितिः पृथिवी, आपो जलानि, तेजो वह्निः, मरुद्वायुः, व्योमाकाशः, कालदिङ्मनांसि प्रसिद्धानि, देही आत्मा,

एतानि नव द्रव्याणीत्यर्थः। कार्यसमवायिकारणत्वं गुणाश्रयत्वं द्रव्यत्वजातिमत्त्वं वा द्रव्यसामान्यलक्षणम्, अव्याप्तिप्रभृतिदोषाभावात्। कार्यसमवायिकारणत्वं न कचिद्द्रव्ये अव्याप्तं, न वा गुणादावतिव्याप्तं, नापि न संभवतीति तल्लक्षणम्। तथाग्रेऽपि योज्यम्। नचाद्यक्षणे निर्गुणे द्रव्ये गुणाश्रयत्वमव्याप्तमिति वाच्यम्। गुणसमानाधिकरणसत्ताभिन्नजातिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात्। सा च जातिर्द्रव्यत्वरूपा कार्यसमवायिकारणतावच्छेदकतया सिद्ध्यति। द्रव्यं हि कार्यसमवायिकारणं तदवच्छेदकं च द्रव्यत्वमिति। ननु नीलं तमश्चलतीति प्रतीत्या गुणक्रियावत्त्वेन दशमद्रव्यस्य तमसः सत्त्वात्कथं द्रव्याणां नवत्वम्। नच तस्य पृथिव्यादिष्वन्तर्भावः, गन्धहीनतया नीलरूपवत्तया च ततो वैलक्षण्यादितिचेन्न। प्रौढप्रकाशकतेजःसामान्याभावस्यैव तमस्त्वात्। चलनादिप्रतीतिस्तु तत्र तेजोपसरणौपाधिकी। अतिरिक्तत्वे गौरवात्। नच विनिगमकाभावादन्धकाराभावस्यैव तेजस्त्वं किं न स्यादिति वाच्यम्। उष्णस्पर्शभास्वररूपाद्युपपत्तेरेव विनिगमकतया तदसंभवात्।

**अथ गुणा रूपं रसो गन्धस्ततः परम् ॥ ३ ॥**
**स्पर्शः संख्या परिमितिः पृथक्त्वं च ततः परम् ॥**
**संयोगश्च विभागश्च परत्वं चापरत्वकम् ॥ ४ ॥**
**बुद्धिः सुखं दुःखमिच्छा द्वेषो यत्नो गुरुत्वकम् ॥**
**द्रवत्वं स्नेहसंस्कारावदृष्टं शब्द एव च ॥ ५ ॥**

गुणान्विभजते—अथ गुणा इति। अथशब्दो द्रव्यविभागानन्तर्यार्थः। परिमितिः परिमाणम्। अदृष्टं धर्माधर्मौ। तेन चतुर्विंशतिर्गुणा इति सिद्ध्यति। द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवान्गुणः। रूपं हि द्रव्यकर्मभिन्नं रूपत्वजातिमच्चातो गुण इति व्यवह्रियते। व्यावृत्तिर्व्यवहारो वा लक्षणस्य प्रयोजनम्। अत्र द्रव्यकर्मणोरतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तं, सामान्यादौ तद्वारणाय विशेष्यदलम्। नच लघुत्वकठिणत्वमृदुत्वादिगुणानामाधिक्यं शङ्क्यम्। कठिनत्वमृदुत्वयोरवयवसंयोगाशैथिल्यशैथिल्यरूपतया लघुत्वस्य च गुरुत्वाभावरूपतयाऽनाधिक्यात्। नच लघुत्वाभाव एव गुरुत्वं किं न स्यादिति वाच्यम्। आद्यपतनासमवायिकारणतया गुरुत्वस्यावश्यकत्वात्। द्रव्यकर्मभिन्ने सामान्यवति कारणतावच्छेदकतया गुणत्वजातिश्च सिद्ध्यति ॥ ३–५ ॥

**उत्क्षेपणं तथाऽपक्षेपणमाकुञ्चनं तथा ॥**
**प्रसारणं च गमनं कर्माण्येतानि पञ्च च ॥ ६ ॥**

कर्माणि विभजते—**उत्क्षेपणमिति** । संयोगभिन्नत्वे सति संयोगासमवायिकारणं कर्म । संयोगजसंयोगेऽतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तम् । घटादौ तद्वारणाय विशेष्यदलम् । कर्मत्वजातिस्तु ऊर्ध्वं गच्छत्यधो गच्छतीत्युत्क्षेपणादिष्वेकाकारानुगतप्रतीत्यैव सिद्ध्यति । उत्क्षेपणादयः पञ्च कर्मभेदाः। तत्रोर्ध्वदेशसंयोगहेतुरुत्क्षेपणम् । अधोदेशसंयोगहेतुरपक्षेपणम् । शरीरे वक्रतासंपादकमाकुञ्चनम् । ऋजुतासंपादकं प्रसारणम् । पूर्वदेशविभागेनोत्तरदेशसंयोगहेतुर्गमनम् ॥ ६ ॥

**भ्रमणं रेचनं स्यन्दनोर्ध्वज्वलनमेव च ॥**
**तिर्यग्गमनमप्यत्र गमनादेव गृह्यते ॥ ७ ॥**

ननु भ्रमणादिकमपि पृथक्कर्माधिकतया कुतो नोक्तमत आह—**भ्रमणमिति** । गमने भ्रमणादीनामन्तर्भावमभिप्रेत्य कर्मणां पञ्चविधत्वमुक्तमिति भावः ॥ ७ ॥

**सामान्यं द्विविधं प्रोक्तं परं चापरमेव च ॥**
**द्रव्यादित्रिकवृत्तिस्तु सत्ता परतयोच्यते ॥ ८ ॥**

सामान्यं विभजते—**सामान्यमिति** । नित्यमनेकसमवेतं सामान्यम् । संयोगादेर्द्विष्ठगुणतयाऽनेकसमवेतत्वात्तत्रातिव्याप्तिवारणाय नित्यमिति । जलपरमाणुरूपादौ तद्वारणायानेकसमवेतमिति । अतएव नात्यन्ताभावेऽपि सा । तस्य नित्यत्वे सत्यनेकवृत्तित्वेप्यनेकसमवेतत्वाभावात् । अतएवाकाशत्वं न जातिः । तस्यैकव्यक्तिवृत्तितयाऽनेकसमवेतत्वाभावात् । तच्च सामान्यं **द्विविधं** द्विप्रकारम् । एकं परं द्वितीयमपरम् । तत्राधिकदेशवृत्ति परसामान्यम् । न्यूनदेशवृत्ति अपरसामान्यं, तदेवोदाहृत्य दर्शयति—**द्रव्यादीति** । सत्तासामान्यं परतया परसामान्यतयोच्यते । तत्र हेतुगर्भं विशेषणमाह—**द्रव्यादित्रिकवृत्तिरिति** । आदिपदेन गुणकर्मणी गृह्येते । द्रव्यादीनां द्रव्यगुणकर्मणां यत्त्रिकं तत्र **वृत्तिः** वर्तमानत्वं यस्याः सा । द्रव्यादित्रिकवृत्तित्वेनाधिकदेशवृत्तित्वात् सत्ता परसामान्यमित्यर्थः । द्रव्यं सत् गुणः सन् कर्म सत् इति प्रतीत्या सत्ताया द्रव्यादित्रयवृत्तित्वम् । सामान्यादिचतुष्टये तु जातिर्नास्ति । सामान्ये सामान्याङ्गीकारेऽनवस्थानात् । विशेषेषु तदभ्युपगमे निःसामान्यत्वलक्षणविशेषरूपबाधप्रसङ्गात् समवायाभावयोश्च संबन्धाऽसम्भवात् । सामान्यादिषु सत्ताव्यवहारश्च स्वाश्रयवृत्ति-

त्वसंबन्धेन निर्वाह्यः। स्वं सत्ता तदाश्रयो घटस्तत्र वर्तमानं घटत्वादिसामान्यमिति परम्परासंबन्धेन सत्तावत्त्वाद् घटत्वं सदिति व्यवहारः ॥ ८ ॥

**परभिन्ना तु या जातिः सैवाऽपरतयोच्यते ॥**
**द्रव्यत्वादिकजातिस्तु परापरतयोच्यते ॥ ९ ॥**
**व्यापकत्वात्परापि स्याद्व्याप्यत्वादपरापि च ॥**

**परभिन्नेति**। परसामान्यतो भिन्ना या जातिर्द्रव्यत्वपृथिवीत्वघटत्वादिरूपा सा अपरसामान्यतयोच्यते। तस्याः सत्तापेक्षया न्यूनदेशवृत्तित्वात्। ननु द्रव्यत्वादिकं कथमपरसामान्यं तस्य सत्तापेक्षया न्यूनदेशवृत्तित्वेऽपि पृथिवीत्वाद्यपेक्षयाधिकदेशवृत्तित्वादित्याशङ्क्य तृतीयां विधामाह—**द्रव्यत्वादीति**। आदिपदेन सत्ताभिन्नव्यापकजातिपरिग्रहः। तुशब्दो वैलक्षण्यार्थः ॥ ९ ॥ द्रव्यत्वादिकं परापरसामान्यम्। तदेव हेतुपूर्वं साधयति—**व्यापकत्वादिति**। व्यापकत्वं पृथिवीत्वाद्यपेक्षयाधिकवृत्तित्वम्। व्याप्यत्वं सत्तापेक्षया न्यूनवृत्तित्वम्। तथाच सत्तैव परं सामान्यं तदपेक्षया सर्वमपरम्। अवान्तरभेदस्त्वापेक्षिकस्तेन सामान्यद्वैविध्यं सुस्थम्।—

**अन्त्यो नित्यद्रव्यवृत्तिर्विशेषः परिकीर्तितः ॥ १० ॥**

विशेषं निरूपयति—**अन्त्य इति**। अन्ते भवः अन्त्यः यदपेक्षया विशेषान्तरं नास्ति। अयमर्थः—घटादिद्व्यणुकान्तसावयवपदार्थानां हि तत्तदवयवभेदात्परस्परं भेदः। निरवयवानां तु विशेषैरेव भेदः। नच तत्रापि विशेषान्तरापेक्षा, अनवस्थापत्तेः। तथाच स्वतो व्यावृत्तत्वे सति व्यावर्तकत्वं विशेषलक्षणम्। तत्स्थानमाह—**नित्यद्रव्यवृत्तिरिति**। पृथिव्यादिचतुष्टयपरमाणवः आकाशकालदिगात्ममनांसि च नित्यद्रव्याणि तेषु वृत्तिर्यस्य सः व्यावर्त्यानामनन्ततया व्यावर्तकानां विशेषाणामप्यनन्तत्वं बोध्यम् ॥ १० ॥

**घटादीनां कपालादौ द्रव्येषु गुणकर्मणोः ॥**
**तेषु जातेश्च संबन्धः समवायः प्रकीर्तितः ॥ ११ ॥**

समवायं दर्शयति—**घटादीनामिति**। नित्यसंबन्धत्वं समवायत्वम्। संयोगादावतिव्याप्तिवारणाय नित्येति। आकाशादौ तद्वारणाय संबन्धत्वमिति। अत्र नित्याभावादिस्वरूपसंबन्धेऽतिप्रसङ्गवारणाय संबन्धिभिन्नत्वं विशेषणं देयम्।

घटादीनामित्यादिना समवायस्थानप्रदर्शनम् । घटादीनामवयविनां कपालादौ अवयवेषु यः संबन्धः स समवायः । तथा द्रव्येषु गुणवत्सु कर्मवत्सु च गुणकर्मणोः संबन्धः तेषु द्रव्यगुणकर्मसु जातेः सामान्यस्य संबन्धः, चकारेण नित्यद्रव्यविशेषयोः संबन्धः समुच्चीयते । तेनावयवावयविनोर्गुणगुणिनोः क्रियाक्रियावतोर्जातिव्यक्त्योर्नित्यद्रव्यविशेषयोश्च संबन्धः समवाय इति सिद्धम् । इमे एवायुतसिद्धपदेनोच्यन्ते । अयुतसिद्धवृत्तिः समवाय इत्यर्थः ॥ ११ ॥

**अभावस्तु द्विधाऽन्योन्यसंसर्गाभावभेदतः ॥**
**प्रागभावस्तथा ध्वंसोऽप्यत्यन्ताभाव एवच ॥ १२ ॥**
**एवं त्रैविध्यमापन्नः संसर्गाभाव इष्यते ॥**

अभावं विभजते—**अभाव इति** । द्रव्यादिषट्कभिन्नत्वमभावत्वम् । द्रव्यादिष्वन्योन्यमेकद्वित्र्यादिनिरूपितभेदस्तिष्ठति न षट्कनिरूपितः स चाभाव एवेत्यर्थः । तस्य द्वैविध्यमाह—**अन्योन्येति** । अन्योन्यसंसर्गाभावभेदत इत्यत्र द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणमभावपदं प्रत्येकमन्योन्यसंसर्गपदाभ्यां योज्यम्; तेनान्योन्याभावः संसर्गाभाव इति भेदादभावो द्विधेत्यर्थः । तत्र तादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽभावोऽन्योन्याभावः । समवायसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताके संयोगात्यन्ताभावेऽतिव्याप्तिवारणाय तादात्म्येति । स च घटः पटो न भवतीति प्रतीतिहेतुः । तादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नपटनिष्ठप्रतियोगिताकाभाववान्घट इत्यर्थः । अन्योन्याभावभिन्नाभावत्वं संसर्गाभावत्वम् । अन्योन्याभावेऽतिव्याप्तिवारणाय तद्भिन्नत्वं घटादौ तद्वारणायाऽभावपदम् । अन्योन्याभावस्तु नित्य एकविध इति संसर्गाभावं विभजते—**प्रागभाव इति** । तत्र विनाश्यभावः प्रागभावः। ध्वंसेऽतिप्रसङ्गव्यावृत्त्यर्थं विनाशीति ।घटादौ तद्वारणायाभावेति । प्रतियोगिसमवायिकारणनिष्ठः प्रतियोगिजनकः प्रतियोग्युत्पत्तिविनाश्यो भविष्यतीति व्यवहारहेतुः प्रागभावः । यथा घटप्रागभावो घटसमवायिकारणे कपाले तिष्ठति, घटोत्पत्तौ च निमित्तं, घटो भविष्यतीति व्यवहारकारणं, घटोत्पत्त्या च विनश्यति । नच तस्य मास्तु नाश इति वाच्यम् । तदविनाशे घटोत्पत्त्यनन्तरं पुनर्घटोत्पत्तिप्रसङ्गात् । नच कारणान्तरासन्निधानं शङ्क्यम् । घटोत्पत्तिकाले कपालतत्संयोगकुलालादीनां सत्वात् । एवं पटप्रागभावादावपि योज्यम् । जन्याभावो ध्वंसः। प्रागभावेऽतिव्याप्तिवारणाय जन्येति । घटादौ तद्वारणायाभावेति । प्रागभावो ह्यनादित्वान्न जायते प्रतियोग्युत्पत्त्या परं

विनश्यति । ध्वंसस्तु प्रतियोगितो जायते परमनन्तत्वान्न नश्यतीति तयोर्भेदः । तथाच ध्वंसः प्रतियोगिजन्यः प्रतियोगिसमवायिकारणनिष्ठः प्रतियोगिनो ध्वस्तत्व-व्यवहारहेतुः । यथा घटध्वंसो मुद्गरप्रहारेण घटात् जायते कपाले तिष्ठति घटो ध्वस्त इति व्यवहारहेतुः । नच तस्यापि नाशोऽस्त्विति वाच्यम् । तन्नाशे प्रति-योग्युन्मज्जनप्रसङ्गात् । अभावाभावस्य भावत्वाङ्गीकारात् । एवं पटादिध्वंसेऽपि बोध्यम् । नित्यसंसर्गाभावोऽत्यन्ताभावः । संसर्गाभावत्वं ध्वंसादावपीति तद्व्यावृत्त्यर्थं नित्येति । नित्यत्वं चान्योन्याभावेऽपीति संसर्गाभावेति । नित्यसंसर्गत्वं समवाये-ऽप्यस्तीत्यभावपदमुपन्यस्तम् । इह भूतले घटो नास्तीति प्रतीतिविषयोऽत्यन्ता-भावः । भूतलनिष्ठसंयोगसंबन्धावच्छिन्नघटनिष्ठप्रतियोगिताकाभाव इत्यर्थः । वायौ रूपं नास्तीत्यत्र वायुनिष्ठसमवायसंबन्धावच्छिन्नरूपनिष्ठप्रतियोगिताकात्यन्ताभाव इत्यर्थः। स च समवायवदेक एव नानात्वकल्पने गौरवात् । नानात्वप्रतीतिस्तु प्रति-योगिभेदात्प्रतियोगितावच्छेदकभेदादारोप्यसंसर्गभेदाच्चोपपद्यते। तथाहि घटाभावः पटाभावः देवदत्ताभाव इति घटपटदेवदत्तरूपप्रतियोगिभेदादभावभेदः । एवं रक्त-घटाभावः नीलघटाभावः नीलपटाभावश्चित्रपटाभावः दण्डविशिष्टदेवदत्ताभावः कुण्डलिदेवदत्ताभाव इति प्रतियोगितावच्छेदकभेदाद्भेदः । रक्तघटाभावे न घटत्वं प्रतियोगितावच्छेदकं किंतु रक्तघटत्वं, एवं नीलघटाभावे नीलघटत्वं प्रतियोगि-तावच्छेदकमेवमग्रेऽपि । तथा संयोगेन घटवत्यपि भूतले समवायेन घटाभावः समवायेन घटवत्यपि कपाले संयोगेन घटाभाव इत्यारोप्यसंसर्गभेदाद्भेदः । किंच एकत्र घटानयनेनात्यन्ताभावनाशे सर्वत्राभावव्यवहाराभावप्रसङ्गनिवारणायात्य-न्ताभावस्य नित्यत्वमास्थेयम् । नच तन्नित्यत्वे घटापसारणोत्तरं घटानयने तदप्र-तीत्यनुपपत्तिरिति वाच्यम् । तत्प्रत्यायकाभावेन तदप्रतीत्युपपत्तेः । किंतत्प्रत्याय-कमितिचेद्भूतलघटसंयोगप्रागभावध्वंसयोरन्यतरत् । यत्र घटोऽपसारितस्तत्र संयो-गध्वंसः । यत्र च नानीतस्तत्र तत्प्रागभाव इति घटाभावप्रतीतिः । यत्र तु घट आनीतस्तत्र संयोगस्य वर्तमानतया संयोगध्वंसप्रागभावयोरभावान्नात्यन्ताभावप्र-तीतिरिति प्रत्यायकाभावेनाप्रतीत्युपपत्तौ किमनित्यत्वाश्रयणेन । ननु भूतलघटाभा-वयोः कः संबन्धः । न तावत्संयोगः । तस्य द्रव्यमात्रवृत्तितया भूतलस्य द्रव्यत्वेऽप्य-भावस्य द्रव्यत्वाभावेन तदसंभवात् । नापि समवायः । अयुतसिद्ध्यभावादितिचेत्स्व-रूपसंबन्ध इति गृहाण । घटाभावज्ञानकालीनं घटाभाववत्तया ज्ञातं भूतलमेव घटाभावसंबन्धः । एवमन्यत्रापि ॥ १२ ॥

## सप्तानामपि साधर्म्यं ज्ञेयत्वादिकमुच्यते ॥ १३ ॥

अथ द्रव्यादिसप्तपदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्ये शिष्यबुद्धिवैशद्यार्थं निरूपयितुमारभते—**सप्तानामिति**। आदिपदेनाभिधेयत्वप्रमेयत्वादिकं ग्राह्यम् । सप्तानामपि द्रव्याद्यभावान्तपदार्थानां ज्ञेयत्वाभिधेयत्वादिकं साधर्म्यं समानो धर्म उच्यते, सप्तानामपीश्वरज्ञानविषयत्वात्प्रमाविषयत्वादभिधाविषयत्वाच्च । एवं द्रव्यादीनां षण्णां भावत्वं साधर्म्यं बोध्यम् ॥ १३ ॥

## द्रव्यादयः पञ्च भावा अनेके समवायिनः ॥

अथ द्रव्यादिपञ्चानां समानधर्मं दर्शयति—**द्रव्यादय इति** । द्रव्यादयः द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषाः पञ्च पदार्थाः भावा अनेके भवन्ति, अथ च समवायिनो भवन्ति । द्रव्यादयः पञ्चेतिपदमुद्देश्यपरम् । भावा अनेके इति विधेयपरम् । तथाचानेकत्वे सति भावत्वं द्रव्यादिपञ्चानां साधर्म्यमिति फलितम् । समवाये भावत्वस्य सत्वात्तत्रातिव्याप्तिवारणायानेकत्वे सतीत्युक्तम् । अनेकत्वमभावेऽप्यस्तीति तत्रातिप्रसङ्गव्यासेधार्थं भावत्वमिति । तथा समवायित्वमपि पञ्चानां साधर्म्यं तच्च समवायसंबन्धेन संबन्धित्वं, द्रव्याणां स्वकार्यकारणद्रव्यैर्गुणकर्मसामान्यविशेषैश्च समवायात् समवायेन संबन्धित्वम् । समवायाभावयोश्च न कुत्रापि समवायित्वमिति तयोर्वैधर्म्यं बोध्यम् । ननु प्रत्येकं घटादावाकाशादिषु च नानेकत्वमित्यव्याप्तिरितिचेन्न । अनेकभाववृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वस्याभिप्रेतत्वात् । सात्र जातिर्द्रव्यत्वगुणत्वादिरूपा द्रव्यत्वस्य चाकाशादौ सत्वान्नाव्याप्तिः । ननु गुणे गुणानङ्गीकारात्संख्यारूपानेकत्वस्य गुणादिष्वभावात्कथं तत्रानेकत्वव्यवहार इतिचेत्—स्वाश्रयसमवेतत्वसंबन्धेनेति गृहाण ।

## सत्तावन्तस्त्रयस्त्वाद्याः

**सत्तावन्त इति** । आद्यास्त्रयः पदार्था द्रव्यगुणकर्मरूपाः सत्तावन्तो ज्ञेयाः । द्रव्यं सत् गुणः सन् कर्मसदिति प्रतीतेः सत्तासामान्यं तेषां साधर्म्यमित्यर्थः । सामान्यादिषु सत्ताप्रतीतिस्तदेकाश्रयसंबन्धादिति प्राक् प्रपञ्चितम् ।

## गुणादिर्निर्गुणक्रियः ॥ १४ ॥

**गुणादिर्द्रव्यभिन्नपदार्थषट्कम्** । **निर्गुणक्रियः** गुणक्रियाभ्यो गुणकर्मभ्यो निर्गतो निर्गुणक्रियः गुणक्रियाशून्य इत्यर्थः । द्रव्यस्यैव गुणकर्माधारतया द्रव्यभिन्नानां तच्छून्यत्वं साधर्म्यमित्यर्थः ॥ १४ ॥

**सामान्यपरिहीनास्तु सर्वे जात्यादयो मताः ॥**

**सर्वे जात्यादयः** सामान्यविशेषसमवायाभावाः **सामान्यपरिहीना** मताः। सामान्यानधिकरणत्वमेषां साधर्म्यमित्यर्थः । अनवस्था-रूपबाध-संबन्धासंभवैस्तेषु न जातिरिति प्राङ्निरूपितम्।

**पारिमाण्डल्यभिन्नानां कारणत्वमुदाहृतम् ॥ १५ ॥**

**पारिमाण्डल्यभिन्नानामिति** । पारिमाण्डल्यं परमाणुपरिमाणं तद्भिन्नानां सर्वेषां पदार्थानां कारणत्वं साधर्म्यमुदाहृतं न्यायविद्भिरित्यर्थः । द्रव्याणां क्वचित्समवायिकारणत्वं क्वचिन्निमित्तत्वं गुणकर्मणां त्वसमवायिकारणत्वमितरेषां निमित्तकारणत्वमिति सर्वेषां कारणत्वं साधर्म्यम् । पारिमाण्डल्यं तु न कुत्रापि कारणम्। तथाहि परिमाणं हि स्वाश्रयारब्धकार्ये स्वसमानजातीयोत्कृष्टपरिमाणजनकं भवति । पारिमाण्डल्यस्य कारणत्वे तदाश्रयः परमाणुस्तदारब्धकार्यं द्व्यणुकरूपं, तत्र तेन स्वसमानजातीयोत्कृष्टपरिमाणजनने अणोरुत्कृष्टमणुतरमिति न्यायात् द्व्यणुकस्याणुसकाशादणुतरत्वापत्तिः । परमाणोरपकृष्टपरिमाणतारतम्यविश्रान्तिभूमित्वसिद्धान्तभङ्गश्चेति तस्य न कारणत्वम्। अत्र पारिमाण्डल्यं द्व्यणुकपरिमाणस्याकाशादिगतपरममहत्परिमाणस्य चोपलक्षणं बोध्यम्। ततोऽस्याकारणत्वात् न द्व्यणुकपरिमाणस्य त्र्यणुकपरिमाणजनकत्वं त्र्यणुकस्य द्व्यणुकादपि सूक्ष्मतया चाक्षुषत्वाभावापत्तिः। अतएवाणुगतद्वित्वसंख्या द्व्यणुकगतत्रित्वसंख्या च द्व्यणुकत्र्यणुकयोः परिमाणजनिकेति वक्ष्यते । एवं परममहत्परिमाणस्य कारणत्वे तदाश्रयद्रव्यस्याकाशादेस्ततोऽप्युत्कृष्टपरिमाणवत्त्वापत्त्याऽऽकाशादेः परममहत्त्वमेव लुप्येत ॥ १५ ॥

**अन्यथासिद्धिशून्यस्य नियता पूर्ववर्तिता ॥**
**कारणत्वं भवेत्**

ननु कारणत्वमेव किं भवतीत्यत आह—**अन्यथासिद्धीति** । पूर्ववर्तिता कार्योत्पत्तिप्राक्कालवृत्तित्वं, तच्च दैवादागते रासभादावपि भवतीति तत्रातिप्रसङ्गव्यावृत्त्यर्थं नियतेति विशेषणम् । नियतत्वमावश्यकत्वं, तादृशपूर्ववर्तिताया रासभादावभावान्न तत्रातिव्याप्तिरित्यर्थः । नियतत्वं कारणत्वमित्युक्तौ कार्येऽतिव्याप्तिरिति पूर्ववर्तिताग्रहणम् । नियतपूर्ववर्तिता दण्डत्वादावस्तीति तद्व्यवच्छेदार्थमन्यथासिद्धिशून्यस्येत्युक्तिः । दण्डत्वादेस्तु दण्डादिनान्यथासिद्धत्वान्न कारणत्वम्।

तथा चानन्यथासिद्धनियतपूर्ववृत्तित्वं कारणत्वमिति सिद्धम् । तच्च दण्डकपालकुलालादावस्तीति तत्कारणमुच्यते ।

**तस्य त्रैविध्यं परिकीर्तितम् ॥ १६ ॥**

एवंलक्षितं कारणत्वं विभजते—**तस्येति** । तस्य कारणत्वस्य त्रैविध्यं परिकीर्तितं तत्कारणं त्रिविधमित्यर्थः ॥ १६ ॥

**समवायिकारणत्वं ज्ञेयमथाप्यसमवायिहेतुत्वम् ॥**
**एवं न्यायनयज्ञैस्तृतीयमुक्तं निमित्तहेतुत्वम् ॥ १७ ॥**

त्रैविध्यमेवाह—**समवायीति** । अथापीति समुच्चये । असमवायिहेतुत्वमसमवायिकारणत्वम् । निमित्तहेतुत्वं निमित्तकारणत्वम् । कारणं त्रिविधं समवायिकारणमसमवायिकारणं निमित्तकारणं चेत्यर्थः ॥ १७ ॥

**यत्समवेतं कार्यं भवत्यवेहि समवायिजनकं तत् ॥**

तत्र समवायिकारणं लक्षयति—**यत्समवेतमिति** । कार्यं घटपटादि यत्समवेतं यस्मिन्समवायसंबन्धेन संबद्धं सद्भवति उत्पद्यते तत्समवायिजनकं समवायिकारणमवेहि जानीहीति शिष्यावधानार्थमुक्तिः । घटो हि कपालयोः समवेतो जायत इति कपाले घटस्य समवायिकारणे भवतः, पटश्च तन्तुषु समवेतो जायते ततस्तन्तवः पटस्य समवायिकारणं, घटपटयो रूपं घटपटयोः समवेतं जायते अतो घटपटयोः स्वरूपं प्रति समवायिकारणत्वम् । एवमन्यदपि बोध्यम् ।

**तत्रासन्नं जनकं द्वितीयम्**

असमवायिकारणं लक्षयति—**तत्रेति** । तत्र समवायिकारणे आसन्नं सत् यज्जनकं तदसमवायिकारणम् । जनकत्वं समवायिकारणेऽपीति तद्वारणार्थं तत्रासन्नमिति । पटसमवायिकारणतन्तुषु समवेतस्य तन्तुत्वस्यापि तत्रासन्नत्वात्तद्वारणाय जनकमिति, तन्तुत्वस्यान्यथासिद्धत्वेनाजनकत्वान्नातिव्याप्तिरिति भावः। तत्रासमवायिकारणस्य समवायिकारणे प्रत्यासत्तिरपि समवायेन, क्वचित्स्वसमवायिसमवायेन बोध्या । तत्राद्या यथा कपालसंयोगस्य । घटस्य समवायिकारणं कपालद्वयं तत्र समवायेन प्रत्यासन्नस्तत्संयोगो घटं जनयन् घटं प्रत्यसमवायिकारणं, एवं तन्तुसंयोगः पटसमवायिकारणतन्तुषु समवायेन प्रत्यासन्नः पटजनकः पटासमवायिकारणम् । द्वितीया प्रत्यासत्तिर्यथा कपालरूपस्य—घटरूपस्य समवायिकारणं घटस्तत्र स्वसमवायिसमवायसंबन्धेन प्रत्यासन्नं कपालरूपं घटरूपं जनयत् घटरूपासम-

वायिकारणम्। कपालरूपस्य घटे समवायेन प्रत्यासत्तिर्न भवति तस्य कपालसमवेतत्वात्, विनाच प्रत्यासत्तिं न कारणत्वमन्यथातिप्रसङ्गात्, ततः स्वसमवायिसमवायसंबन्ध आश्रितः। स्वं कपालरूपं तस्य समवायि कपालं तत्समवेतो घट इति परम्परासंबन्धेन कपालरूपस्य घटे प्रत्यासन्नत्वं, एवं तन्तुरूपं पम्परया पटे सन्निहितं सत् पटरूपजनकमिति पटरूपाऽसमवायिकारणम्। एवमन्यदपि ज्ञेयम्। इमे एव प्रत्यासत्ती कार्येण सहैकार्थसमवेतत्व—कारणेन सहैकार्थसमवेतत्वपदाभ्यामुच्येते। तत्र कपालसंयोगस्य कार्येण घटेन सह एकस्मिन्नर्थे कपाले समवेतत्वं, कपालरूपस्य कारणेन स्वकार्यघटरूप-समवायिकारणेन घटेन सहैकार्थे कपाले समवेतत्वमित्यर्थः। अत्रात्मविशेषगुणानां कुत्रापि नासमवायित्वमिति तद्भिन्नत्वं सामान्यलक्षणे विशेषणं देयम्। तथाचात्मविशेषगुणभिन्नत्वे सति समवायस्वसमवायिसमवायान्यतरसंबन्धेन च कारणत्वमसमवायिकारणत्वमिति सामान्यलक्षणं सिद्धम्। एवं कपालभिन्नसमवेतभिन्नत्वे सति कपालसमवेतं घटकारणं घटासमवायिकारणं, तन्तुभिन्नसमवेतभिन्नत्वे सति तन्तुसमवेतं पटजनकं पटासमवायिकारणमित्यादिविशेषलक्षणमूह्यम्। अत्र कपालचक्रसंयोगकपालकुलालहस्तसंयोगादीनामपि कपालसमवेततया घटासमवायित्वं स्यादिति तन्निषेधार्थं सत्यन्तं, कपालचक्रसंयोगस्य न कपालमात्रसमवेतत्वं किंतु चक्रसमवेतत्वमपि, संयोगस्य द्विष्ठगुणत्वात्कपालसंयोगस्तु कपालसमवेत एवेति भावः। कपालसमवेतरूपादौ कपालत्वादौ च तद्वारणार्थं कारणमिति, तयोरन्यथासिद्धत्वेनाकारणत्वात्। एवं तुरीतन्तुसंयोगकुविंदहस्तसंयोगादावतिप्रसङ्गवारणाय पटासमवायिकारणलक्षणेऽपि सत्यन्तम्। तन्तुत्वे तन्तुरूपादौ च तद्वारणाय पटजनकमिति।

**आभ्यां परं तृतीयं स्यात् ॥ १८ ॥**

निमित्तकारणं लक्षयति—**आभ्यामिति**। आभ्यां समवाय्यसमवायिकारणाभ्यां परं भिन्नं सत् यत्कारणं तत्तृतीयं निमित्तकारणं स्यात्। यथा कुलालदण्डचक्रादिर्घटस्य। कुविन्दतुरीवेमादिकं पटस्य। एवं कपालचक्रसंयोगतुरीतन्तुसंयोगयोश्च समवाय्यसमवायिभिन्नत्वे सति घटपटकारणत्वान्निमित्तत्वं बोध्यम्। दिक्कालादृष्टेशादीनां कार्यमात्रं प्रति निमित्तकारणत्वम् ॥ १८ ॥

**येन सह पूर्वभावः कारणमादाय वा यस्य ॥**
**अन्यं प्रति पूर्वभावे ज्ञाते यत्पूर्वभावविज्ञानम् ॥ १९ ॥**

अन्यथासिद्धिशून्यस्येति कारणलक्षणेऽन्यथासिद्धिशून्यत्वं निवेशितं तत्र का

वान्यथासिद्धिरित्यपेक्षायां पञ्चविधमन्यथासिद्धमाह—**येन सहेति**। कारणस्य कार्यं प्रति येन—सह यदवच्छेदेन पूर्वभावः पूर्ववर्तित्वं गृह्यते तद्रूपं तत्कार्यं प्रत्यन्यथासिद्धं प्रथमम्। द्वितीयं दर्शयति—**कारणमिति**। वा अथवा यस्य कार्यं प्रति पूर्वभावः स्वातन्त्र्येण न ज्ञायते, परंतु कारणमादाय तत्कार्यकारणमुपादाय तदधीनतया पूर्वभावो गृह्यते तद्द्वितीयमन्यथासिद्धम्। तृतीयमाह—**अन्यं प्रतीति**। अन्यं उपस्थितकार्यादितरं पदार्थं प्रति पूर्वभावे ज्ञाते सति यस्य पश्चादुपस्थितकार्यं प्रति पूर्वभावविज्ञानं भवति तदप्यन्यथासिद्धम् ॥ १९ ॥

**जनकं प्रति पूर्ववर्तितामपरिज्ञाय न यस्य गृह्यते ॥**
**अतिरिक्तमथापि यद्भवेन्नियतावश्यकपूर्ववर्तिनः ॥२०॥**

चतुर्थमन्यथासिद्धमाह—**जनकं प्रतीति**। जनकमुपस्थितकार्यकारणं प्रति पूर्ववर्तितामपरिज्ञात्वा यस्य कार्यं प्रति पूर्ववर्तिता न गृह्यते अर्थात्प्रथमं कार्यकारणं प्रति प्राग्भावं ज्ञात्वा पुनस्तत्परम्परासंबन्धेनोपस्थितकार्यं प्रति प्राग्भावो ज्ञायते तदन्यथासिद्धम्। पञ्चममन्यथासिद्धं लक्षयति—**अतिरिक्तमिति**। नियतमव्यभिचारि आवश्यकमवश्यक्लृप्तं यत्पूर्ववर्ति कारणं तस्माद्यदतिरिक्तमधिकं भवेत्तत्पञ्चममन्यथासिद्धम् ॥ २० ॥

**एते पञ्चान्यथासिद्धाः**

निगमयति—**एते इति**। एते पूर्वोक्तलक्षणविशिष्टाः पञ्चान्यथासिद्धा इति व्यवह्रियन्ते।

**दण्डत्वादिकमादिमम् ॥**
**घटादौ दण्डरूपादि द्वितीयमपि दर्शितम् ॥ २१ ॥**
**तृतीयं तु भवेद्व्योम कुलालजनकोऽपरः ॥**
**पञ्चमो रासभादिः स्यादेतेष्वावश्यकस्त्वसौ ॥ २२ ॥**

तत्र क्रमादुदाहरणान्याह—**दण्डत्वादिकमिति**। आदिपदेन कुलालत्वतन्तुत्वादिपरिग्रहः। आदिमं प्रथममन्यथासिद्धम्। दण्डो हि घटं प्रति निमित्तकारणं तस्य च घटं प्रति प्राग्भावो दण्डत्वावच्छेदेन गृह्यते इति घटकारणे दण्डे कारणतावच्छेदकं दण्डत्वमन्यथासिद्धम् ॥ १ ॥ **घटादौ** कार्ये जनयितव्ये

दण्डरूपादि **द्वितीयमन्यथासिद्धं** दर्शितम्। दण्डरूपस्य घटं प्रति प्राग्भावो न स्वातन्त्र्येणावगम्यते किंतु घटकारणं दण्डमादाय तदधीनतयेति घटं प्रति दण्डरूपमन्यथासिद्धम् ॥ २ ॥ **व्योमाकाशं तृतीयमन्यथासिद्धं** भवेत् घटादिकं प्रत्याकाशस्य कारणत्वमभ्युपगम्यते चेत्तदा तदवच्छेदकमाकाशत्वं वाच्यम्। तच्च न जातिरेकव्यक्तिवृत्तित्वात्। किंतूपाधिः शब्दसमवायिकारणत्वमाकाशत्वम्। एवंच शब्दं प्रत्याकाशस्य पूर्ववृत्तितां ज्ञात्वानन्तरं घटादिकं प्रति प्राग्भावो ज्ञायते इति घटं प्रत्याकाशं तृतीयमन्यथासिद्धम् ॥ ३ ॥ **कुलालजनकः** कुलालपिता **अपरश्चतुर्थोऽन्यथासिद्धः**। कुलालजनकस्य कुलालत्वेन घटं प्रति कारणत्वे नान्यथासिद्धिः कुलालत्वावच्छिन्नस्य घटत्वावच्छिन्नं प्रति कारणत्वात्। कुलालपितृत्वेन तस्य घटहेतुत्वे चतुर्थ्यन्यथासिद्धिः। तथाहि कुलालजनकस्य घटं प्रति पूर्वभावो घटजनककुलालं प्रति पूर्ववृत्तितां ज्ञात्वैव तत्परम्परासंबन्धेन गृह्यते इति कुलालं प्रति कारणीभवन्नपि कुलालजनकः कुलालजन्यं घटं प्रत्यन्यथासिद्धः ॥ ४ ॥ **रासभादिः पञ्चमोऽन्यथासिद्धः**। यद्घटव्यक्तिं प्रति रासभस्य नियतपूर्ववर्तित्वं जातं तत्रापि रासभस्य न कारणत्वं, घटत्वावच्छिन्नं प्रति नियतावश्यकपूर्ववर्तितया सिद्धकारणभावैर्दण्डादिभिरेव तद्घटव्यक्तेरपि संभवे रासभस्य न कारणत्वमन्यथासिद्धत्वात् ॥ ५ ॥ पञ्चमेनान्येषां चरितार्थत्वमाह—**एतेष्विति**। एतेषु पञ्चस्वन्यथासिद्धेष्वसौ पञ्चमोऽन्यथासिद्ध आवश्यकः। अनेनेतरेषां संग्रहादस्येतरैरसंग्रहात्। तथाहि घटमात्रं प्रति नियतावश्यकॢप्तपूर्ववृत्तिभिर्दण्डादिभिरेव घटसंभवे दण्डत्वदण्डरूपाकाशानि नान्यथासिद्धत्वात्कारणीभवितुं क्षमन्ते। कुलालेन घटोत्पत्तिसंभवे किं तत्पित्रेति चतुर्थस्याप्यन्यथासिद्धत्वम्। अवान्तरविशेषतया भेदप्रदर्शनं तु शिष्यबुद्धिवैशद्यार्थम् ॥ २१–२२ ॥

**समवायिकारणत्वं द्रव्यस्यैवेति विज्ञेयम् ॥**
**गुणकर्ममात्रवृत्ति ज्ञेयमथाप्यसमवायिहेतुत्वम् ॥ २३ ॥**

एवं प्रासंगिकं कारणत्वलक्षणं सोपस्करं निरूप्य प्रकृतं साधर्म्यनिरूपणमनुसरति—**समवायीति**। एवकारेण गुणादिषट्के समवायिहेतुत्वं नेति वैधर्म्यं द्योत्यते। मात्रपदेन द्रव्यस्य सामान्यादिचतुष्टयस्य च व्यावृत्तिः। नन्वात्मविशेषगुणानां कुत्राप्यसमवायिहेतुत्वं नास्तीत्यव्याप्तिरितिचेन्न। गुणकर्मभिन्नानामसमवायिहेतुत्वं नास्तीत्यत्र तात्पर्यात्। यद्वा असमवायिकारणवृत्तिसत्ताभिन्नजातिमत्त्वार्थत्वात्तत्रापि नाव्याप्तिः ॥ २३ ॥

**अन्यत्र नित्यद्रव्येभ्य आश्रितत्वमिहोच्यते ॥**

**अन्यत्रेति** । इह सप्तसु पदार्थेषु नित्यद्रव्याणि पृथ्व्यादिचतुष्कपरमाणवो व्योमादिपञ्चकं च तेभ्यः अन्यत्र भिन्नेषु पदार्थेष्वाश्रितत्वं साधर्म्यमुच्यते। आश्रितत्वं नाम कालिकसंबन्धातिरिक्तसंबन्धेन वृत्तिमत्त्वम्, घटादीनां संयोगेन भूतलादौ समवायेन कपालादौ वृत्तिमत्त्वादाश्रितत्वम्, एवं गुणकर्मणोर्द्रव्येषु, सामान्यस्य च द्रव्यादिषु त्रिषु, विशेषाणां नित्यद्रव्येषु समवायेन, समवायस्य च द्रव्यादिषु स्वरूपसंबन्धेनाभावस्य च द्रव्यादिषु विशेषणतासंबन्धेनाश्रितत्वं बोध्यम्। नित्यद्रव्याणां त्वकार्यतया समवायेन वृत्तिमत्त्वं नास्ति परममहतां च तेषां संयोगेनापि तदभावः । अपकृष्टपरिमाणवतां नित्यद्रव्याणां च संयोगस्य वृत्तिनियामकत्वानभ्युपगमादनाश्रितत्वं, गगनादिकं सदास्तीत्यादिव्यवहारेण नित्यद्रव्याणां कालिकसंबन्धेन कालादौ वृत्तिमत्त्वेऽपि न दोषः । तदतिरिक्तसंबन्धस्यैवाश्रितत्वघटकत्वात् ॥ इति पदार्थानां साधर्म्यनिरूपणम् ॥

**क्षित्यादीनां नवानां तु द्रव्यत्वं गुणयोगिता ॥ २४ ॥**

अथ द्रव्याणामेव साधर्म्यं निरूपयति—**क्षित्यादीनामिति** ॥ द्रव्यत्वजातिमत्त्वं गुणवत्त्वं नवद्रव्याणां साधर्म्यम् । नवानां यथायोग्यं गुणाननुपदमेव वक्ष्यति ॥ २४ ॥

**क्षितिर्जलं तथा तेजः पवनो मन एव च ॥**
**परापरत्वमूर्तत्वक्रियावेगाश्रया अमी ॥ २५ ॥**

**क्षितिरिति** । परत्वापरत्वे दिक्कृते कालकृते चापेक्षाबुद्धिजन्ये गुणविशेषरूपे । मूर्तत्वं परिच्छिन्नपरिमाणवत्त्वं, क्रिया कर्म, वेगः प्रसिद्धः तदाश्रयत्वं क्षित्यादिचतुष्कस्य मनसश्च साधर्म्यम् ॥ २५ ॥

**कालखात्मदिशां सर्वगतत्वं परमं महत् ॥**

**कालेति** । सर्वगतत्वं सर्वमूर्तसंयोगित्वं, परमं महत् परममहत्परिमाणवत्त्वं, तदाकाशादिचतुष्कस्य साधर्म्यम् ।

**क्षित्यादिपञ्च भूतानि**

भूतत्वमात्मावृत्तिविशेषगुणवत्त्वं तत्क्षित्यादिपञ्चानां साधर्म्यम् । आत्मनि विशेषगुणवत्तयातिप्रसङ्गवारणायात्मावृत्तीति ।

**चत्वारि स्पर्शवन्ति हि ॥ २६ ॥**

पृथिव्यादिचतुर्णां स्पर्शवत्त्वं साधर्म्यम् ॥ २६ ॥

**द्रव्यारम्भश्चतुर्षु स्यात्**

द्रव्यारम्भ इति। द्रव्यारम्भकत्वं पृथिव्यादिसाधर्म्यम्। नच घटादौ तद-व्याप्तिः। द्रव्यारम्भकवृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात्।

**अथाकाशशरीरिणाम् ॥**

**अव्याप्यवृत्तिः क्षणिको विशेषगुण इष्यते ॥ २७ ॥**

आकाशेति। आकाशात्मनां क्षणिकाव्याप्यवृत्तिविशेषगुणवत्त्वं साधर्म्यम्। अव्याप्यवृत्तित्वं स्वात्यन्ताभावसमानाधिकरणत्वं, क्षणिकत्वं तृतीयक्षणवृत्तिध्वंस-प्रतियोगित्वम्। आकाशविशेषगुणः शब्दः स चाकाशैकदेशे जायते द्वितीय-शब्देन च विनश्यति। एवमात्मनो विशेषगुणो ज्ञानादिः शरीरावच्छेदेन जायते स्वोत्तरक्षणवर्तिगुणान्तरेण च विनश्यति ॥ २७ ॥

**रूपद्रवत्वप्रत्यक्षयोगिनः प्रथमास्त्रयः ॥**

रूपद्रवत्वेति। प्रथमास्त्रयः पृथिवीजलवह्नयः रूपद्रवत्वप्रत्यक्षयोगिनः। रूपवत्त्वं द्रवत्ववत्त्वं प्रत्यक्षविषयत्वं च तेषां साधर्म्यमित्यर्थः।

**गुरुणी द्वे रसवती**

द्वे पृथिवीजले गुरुणी गुरुत्ववती रसवती च गुरुत्ववत्त्वं रसवत्त्वं च तयोः साधर्म्यम्।

**द्वयोर्नैमित्तिको द्रवः ॥ २८ ॥**

नैमित्तिकोऽग्निसंयोगजन्यो द्रवो द्वयोः पृथिवीतेजसोर्घृतहेमादिरूपयोर्वर्तते। जले द्रवस्य सांसिद्धिकत्वात् ॥ २८ ॥

**आत्मानो भूतवर्गश्च विशेषगुणयोगिनः ॥**

आत्मानो जीवाः। भूतवर्गः पृथिव्यादिपञ्चकम्। विशेषगुणवत्त्वमेषां साधर्म्यम्।

**यदुक्तं यस्य साधर्म्यं वैधर्म्यमितरस्य तत् ॥ २९ ॥**

एवं साधर्म्यमुक्त्वा तत्प्रतियोगित्वलक्षणवैधर्म्यमाह—यदुक्तमिति। सर्व-पदार्थसाधारणं ज्ञेयत्वादिकं विहाय यद्यस्य साधर्म्यं तदितरस्य वैधर्म्यम् ॥ २९ ॥

स्पर्शादयोऽष्टौ वेगाख्यः संस्कारो मरुतो गुणाः ॥

अथ द्रव्यनवके प्रत्येकं गुणान्विभजते—स्पर्शादय इति । स्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वान्यष्टौ वेगाख्यो वेगनामा संस्कारश्चेति नव मरुतो वायोर्गुणा इत्यर्थः ।

स्पर्शाद्यष्टौ रूपवेगौ द्रवत्वं तेजसो गुणाः ॥ ३० ॥

तेजसो गुणानाह—स्पर्शादीति । स्पर्शाद्यष्टौ पूर्वोक्ताः, वेगः संस्कारः, रूपं द्रवत्वं चेत्येकादश तेजसोऽग्नेर्गुणाः ॥ ३० ॥

स्पर्शादयोऽष्टौ वेगश्च द्रवत्वं च गुरुत्वकम् ॥
रूपं रसस्तथा स्नेहो वारिण्येते चतुर्दश ॥ ३१ ॥

जले चतुर्दशगुणानाह—स्पर्शादय इति ॥ ३१ ॥

स्नेहहीना गन्धयुताः क्षितावेते चतुर्दश ॥

पृथिव्यामपि चतुर्दशाह—स्नेहहीना इति । एते पूर्वोक्तजलगुणाः स्नेहरहिता गन्धसहिताः स्पर्शाद्यष्टकं वेगद्रवत्वगुरुत्वरूपरसगन्धा भूमेर्गुणा इत्यर्थः ।

बुद्ध्यादिषट्कं संख्यादिपञ्चकं भावना तथा ॥ ३२ ॥
धर्माधर्मौ गुणा एते आत्मनः स्युश्चतुर्दश ॥

आत्मनो गुणान्गणयति—बुद्ध्यादीति । बुद्ध्यादिषट्कं बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाः संख्यादिपञ्चकं संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागाः भावनाख्यः संस्कारः धर्माधर्मौ च एते चतुर्दश गुणा आत्मनो जीवस्येत्यर्थः ॥ ३२ ॥—

संख्यादिपञ्चकं कालदिशोः

कालदिशोर्गुणानेकीकृत्याह—संख्यादीति ।

शब्दश्च ते च खे ॥ ३३ ॥

आकाशे तानाह—शब्दश्चेति । खे आकाशे शब्दः ते च संख्यादयः पञ्चेति षड्गुणाः ॥ ३३ ॥

संख्यादिपञ्चकं बुद्धिरिच्छा यत्नोऽपि चेश्वरे ॥

ईश्वरगुणानाह—संख्यादीति । ईश्वरे [अविद्याभावाद्धर्माधर्माभावस्तेन सुख-

दुःखाभावस्तदभावादेव भावनाख्यसंस्काराभावः, वीतरागतया च द्वेषाभावः, ई] सृष्टिनिमित्तकारणतया च नित्यज्ञानेच्छाप्रयत्नवत्त्वाद्विभुत्वादेकत्वादितरभिन्नतया च ज्ञानेच्छाप्रयत्नसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागा अष्टौ ईश्वरगुणा इत्यर्थः ॥—

**परापरत्वे संख्यादिपञ्च वेगश्च मानसे ॥ ३४ ॥**

मनोगुणानाह—**परापरत्वे इति** । परापरत्वे संख्यादिपञ्चकं वेगश्चेत्यष्टौ मानसे मनसि गुणा इति । इति **साधर्म्यवैधर्म्यादि**निरूपणम् ॥ ३४ ॥

**तत्र क्षितिर्गन्धहेतुर्नानारूपवती मता ॥**
**षड्विधस्तु रसस्तत्र गन्धस्तु द्विविधो मतः ॥ ३५ ॥**

एवं पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्ये निरूप्य प्रत्येकं द्रव्यादि निरूपयितुमादौ पृथिवीं निरूपयति—**तत्रेति** । तत्र पृथिव्यादिद्रव्यनवकमध्ये क्षितिः पृथिवी गन्धहेतुः गन्धसमवायिकारणतावच्छेदकं पृथिवीत्वम् । अत्र समवायिकारणत्वस्य हेतुपदेन विवक्षणात्कार्यमात्रनिमित्तहेतौ कालादौ नातिव्याप्तिः । ननूत्पन्नविनष्टघटादावव्याप्तिरितिचेन्न । गन्धसमवायिवृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वविवक्षणात् । गन्धसमवायिकारणं पृथिवी तत्र कारणतावच्छेदकतया वर्तमाना द्रव्यत्वव्याप्यजातिः पृथिवीत्वरूपा तस्याः सर्वत्र सत्त्वान्नाव्याप्तिः । अत्र पृथिवीत्वजातिसिद्ध्यर्थं गन्धहेतुत्वमुक्तम् । लक्षणं तु गन्धवत्त्वमेव । जलादौ गन्धप्रतीतिस्त्वौपाधिकी स्वसमवायिसंयोगसंबन्धेन निर्वाह्या । **नानेति** । शुक्लनीलपीतरक्तहरितकपिशचित्रभेदात्सप्तधा यद्रूपं तद्वती । रूपवति जलादावतिव्याप्तिवारणाय नानेति । तत्र पृथिव्यां रसः षड्विधः, मधुराम्ललवणकटुकषायतिक्तभेदात् । रसवति जलेऽतिप्रसङ्गवारणाय षड्विध इति । गन्धस्तु सौरभासौरभभेदभिन्नो द्विविधः पृथिव्यां तिष्ठतीति वस्तुस्थितिमात्रप्रदर्शनेऽभिप्रायो न लक्षण इति बोध्यम् ॥ ३५ ॥

**स्पर्शस्तस्यां तु विज्ञेयो ह्यनुष्णाशीतपाकजः ॥**
**नित्यानित्या च सा द्वेधा नित्या स्यादणुलक्षणा ॥३६॥**
**अनित्या तु तदन्या स्यात्सैवावयवयोगिनी ॥**
**सा च त्रिधा भवेद्देहमिन्द्रियं विषयस्तथा ॥ ३७ ॥**

**स्पर्श इति** । अनुष्णस्पर्शस्य जले सत्त्वादशीतेति । तस्य तेजसि सत्त्वादनुष्णेति । तादृशस्यापि वायौ सत्त्वात्पाकजेति । वस्तुतस्तु पाकजस्पर्शवत्त्वं

लक्षणमन्यत्र तदभावात् । अनुष्णाशीतेति तु वस्तुस्थितिप्रदर्शनम् । एवं निरूपितां पृथिवीं विभजते—**नित्येति** । नित्यत्वं ध्वंसाप्रतियोगित्वम् । तत्प्रतियोगित्वमनित्यत्वम् । सा पृथिवी द्वेधा द्विप्रकारा नित्या अनित्या च । ते एव क्रमाद्दर्शयति—**नित्येति** । अणुलक्षणा परमाणुरूपा पृथिवी नित्या स्यात् । तदन्या परमाणुभिन्ना द्व्यणुकादिरूपा पृथिवी अनित्या स्यात् । किंच **सैवेति** । तच्छब्देन सन्निकृष्टायाः परामर्शः । सा अनित्या पृथिव्येवावयवयोगिनी सावयवा । एवकारेण नित्याया निरवयवत्वं द्योत्यते । अतएव च तयोर्नित्यत्वानित्यत्वे । सावयवमेव हि द्रव्यं विनश्यति न निरवयवमिति । कार्यरूपां पृथिवीं विभजते—**सा चेति** । सा अनित्या पृथिवी त्रिधा त्रिप्रकारा भवेत् । देहमिन्द्रियं विषयश्चेति भेदात् ॥ ३६-३७ ॥

**योनिजादि भवेद्देहमिन्द्रियं घ्राणलक्षणम् ॥**
**विषयो द्व्यणुकादिस्तु ब्रह्माण्डान्त उदाहृतः ॥ ३८ ॥**

तत्र पार्थिवदेहमुदाहरति—**योनिजादीति** । आदिपदादयोनिजं ग्राह्यम् । शुक्रशोणितमिथोमेलनजन्यं योनिजम् । तद्भिन्नमयोनिजम् । योनिजमपि द्विधा जरायुजमण्डजं चेति । जरायुर्गर्भवेष्टकचर्मपुटं ततो जातं मानुषपश्वादीनाम् । अण्डजं सर्पपक्ष्यादीनाम् । अयोनिजमपि द्विधा स्वेदजमुद्भिज्जं चेति । तत्राद्यं कृमिदंशादीनाम् । पृथिवीमुद्भिद्य जातमुद्भिज्जं तरुगुल्मादीनाम् । अत्र नारकिणां स्वर्गिणां च शरीरमप्ययोनिजम् । धर्माधर्मविशेषसहिताणुभ्य एव तच्छरीरोत्पत्त्यभ्युपगमादिति बोध्यम् । अथ पार्थिवेन्द्रियमाह—**इन्द्रियमिति** । घ्राणं गन्धग्राहकं नासिकाग्रवर्ति तल्लक्षणं तद्रूपं पार्थिवमिन्द्रियमित्यर्थः । पार्थिवं विषयमाह—**विषय इति** । अत्र द्व्यणुकादेः सर्वस्य विषयत्वाभ्युपगमे शरीरेन्द्रिययोरपि विषयेन्तर्भावस्तथापि भेदेनोपन्यासः शिष्यबुद्धिवैशद्याय । अत्रेदं बोध्यम्—आत्मनो भोगायतनं शरीरम् । सुखदुःखान्यतरसाक्षात्कारो भोगः । स चात्मनि यदवच्छेदेन जायते तद्भोगायतनम् । शरीरत्वं च न जातिः पृथिवीत्वादिना संकरात् । संकरस्य जातिबाधकत्वं नैयायिकैरभ्युपगतम् । संकरश्च परस्परात्यन्ताभावसमानाधिकरणयोरेकत्र समावेशः । तथाहि । पृथिवीत्वात्यन्ताभावाधिकरणजलीयादिशरीरेषु वर्तते शरीरत्वम् । शरीरत्वात्यन्ताभावाधिकरणघटादिषु च वर्तते पृथिवीत्वमुभयोश्च समावेश एकत्र पार्थिवशरीरे इति संकरः । किंतु चेष्टाश्रयत्वं **शरीरत्वम्** । चेष्टापि हिताहि-

तत्प्राप्तिपरिहारार्था क्रिया, न स्पन्दनमात्रं, तेन न घटादावतिव्याप्तिः । गन्धवच्च शरीरं पार्थिवशरीरम् । तच्चास्मदादीनाम् । पार्थिवशरीरेऽपि क्लेदोष्मव्यूहावकाशोपलब्धिस्तज्जलादीनां निमित्तहेतुतया निर्वाह्या । अतएव पाञ्चभौतिकत्वव्यवहारः । एवमिन्द्रियत्वमपि न जातिः, तेजस्त्वादिना संकरात्, किंतु शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयत्वमिन्द्रियत्वम् । आत्मन्यतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तम् । शब्देतरोद्भूतविशेषगुणसुखदुःखाद्याश्रयत्वान्नात्मन्यतिव्याप्तिः । उद्भूतविशेषगुणस्य शब्दस्य श्रोत्रे सत्त्वात्तत्राव्याप्तिरतः शब्देतरेति । विशेषगुणरूपादिमति चक्षुरादावव्याप्तिवारणायोद्भूतेति । चक्षुरादिगतगुणानां त्वनुद्भूतत्वान्न दोषः । शब्देतरोद्भूतगुणस्य संयोगादेश्चक्षुरादौ सत्त्वादव्याप्तिवारणाय विशेषेति । एतावतापि कालादावतिव्याप्तिरत उत्तरदलं (यद्यपि कालादावपि सर्वाधारतानियामकसंबन्धेन मनःसंयोगाश्रयत्वं वर्तते इत्यतिव्याप्तितादवस्थ्यं तथापि) तस्य संयोगस्य ज्ञानकारणत्वाभावान्न दोषः । इन्द्रियावयवविषयसंयोगोऽपि प्राचां मते प्रत्यक्षकारणमिति ज्ञानकारणसंयोगाश्रय इन्द्रियावयवेऽपीन्द्रियत्वं स्यादतो मनःसंयोगेति । एवं द्रव्यत्वे सति रूपादिषु पञ्चसु मध्ये गन्धमात्राभिव्यञ्जकमिन्द्रियं पार्थिवेन्द्रियं, घ्राणस्य गन्धत्वाभिव्यञ्जकत्वमपीति व्यभिचारवारणाय रूपादिषु मध्ये इति । घ्राणेन्द्रियसन्निकर्षस्यापि गन्धमात्राभिव्यञ्जकत्वात्तत्रातिव्याप्तिवारणाय द्रव्यत्वे सतीतिविशेषणम् । एवं विषयत्वमपि न जातिः सामान्यादावपि सत्वात् किंतूपभोगसाधनत्वं विषयत्वम् । ननु विषयस्योपभोगसाधनत्वं किं साक्षादिष्यते उत परम्परया ? आद्ये द्व्यणुकादावव्याप्तिः, अन्त्ये परमाणावतिव्याप्तिरितिचेन्न । साक्षात्परम्परासाधारणत्वस्य विवक्षणात् । तथाच परम्परयोपभोगसाधने द्व्यणुकादौ नाव्याप्तिः । नच परमाणावतिव्याप्तिस्तस्यापि लक्ष्यत्वात् । अत्र तु कार्यपृथिव्या एव त्रिधा विभजनाद्द्व्यणुकादिग्रहणमित्यदोषः । गन्धवांश्च विषयः पार्थिवविषयः । पाषाणादौ गन्धानुपलम्भस्त्वनुत्कटतयेति । एवमग्रेऽपि तत्तच्छरीरेन्द्रियविषयेषु विशिष्य लक्षणं द्रष्टव्यम् ॥ ३८ ॥

**वर्णः शुक्लो रसस्पर्शौ जले मधुरशीतलौ ॥**
**स्नेहस्तत्र द्रवत्वं तु सांसिद्धिकमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥**

जलं निरूपयति—वर्ण इति । अत्रेतरव्यावृत्त्यर्थमेवपदमध्याहार्यम् । जले वर्णः शुक्ल एव रसो मधुर एव । तेन न पृथिव्यामतिव्याप्तिः । तेजस्यतिव्याप्ति-

वारणाय शुक्लवर्णस्याभास्वरत्वं बोध्यम् । स्पर्शस्तु जले शीतलः । गङ्गोदके हि प्रत्यक्षं शुक्लत्वं मधुरत्वं शीतलत्वं चानुभूयते । कालिन्दीजलादौ नीलिमोपलब्धिर्जम्बीररसादावम्लाद्युपलब्धिस्तप्तोदकादावौष्ण्यस्य प्रतीतिश्चौपाधिकी स्वसमवायिसंयोगेन निर्वाह्या । स्नेहस्तत्र जले एव। अन्यत्र तदभावात्स्नेहस्यावान्तरविभागाभावात्स्नेहमात्रमुक्तम् । तत्र जले द्रवत्वं सांसिद्धिकं स्वाभाविकम् । नैमित्तिकस्य तस्य पृथिवीतेजोवृत्तित्वात् । एवं शिलातलादौ शीतस्पर्शो घृतादौ च स्नेहस्तैलक्षीरादौ सांसिद्धिकद्रवत्वश्च जलीय एव बोध्यः ॥ ३९ ॥

**नित्यतादिप्रथमवत्किंतु देहमयोनिजम् ॥**
**इन्द्रियं रसनं सिन्धुहिमादिर्विषयो मतः ॥ ४० ॥**

जलं विभजते—**नित्यतादीति** । प्रथमवदिति षष्ठ्यन्ताद्वतिस्तेन प्रथमायाः पूर्वोदितायाः पृथिव्या इव जलस्य नित्यतादि बोध्यमित्यर्थः । तथाहि जलं द्विविधं नित्यमनित्यं च । नित्यं परमाणुरूपम् । अनित्यं द्व्यणुकादि सर्वम् । तदेव चावयवसमवेतम् । तच्च त्रिधा शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । ननु जलीयशरीरमपि योनिजायोनिजभेदेन किं द्विधेत्याकांक्षायां पृथिवीतो यो विशेषस्तमाह—**किंत्विति** जलीयदेहमयोनिजमेव न योनिजमित्यर्थः । तदपि वरुणलोके प्रसिद्धम् । जलीयादिशरीराणां पार्थिवभागोपष्टब्धतयोपभोगक्षमत्वं बोध्यम् । जलीयमिन्द्रियं दर्शयति—**इन्द्रियमिति** । रसनं द्रव्यत्वे सति रूपादिपञ्चसु रसमात्राभिव्यञ्जकं जिह्वाग्रवर्ति जलीयमिन्द्रियम् । विषयमाह—**सिन्ध्विति** । सिन्धुः समुद्रः । हिमं तुषारः आदिपदात्कूपवापीनदीतडागकरकादिग्रहः । नच हिमकरकयोः कठिनत्वात्पार्थिवत्वमिति वाच्यम् । अदृष्टविशेषेण द्रवत्वप्रतिरोधे तत्र तत्प्रत्ययस्य भ्रान्तत्वात् ॥ ४० ॥

**स्पर्श उष्णस्तेजसस्तु स्याद्रूपं शुक्लभास्वरम् ॥**
**नैमित्तिकं द्रवत्वं तु नित्यतादि च पूर्ववत् ॥ ४१ ॥**

तेजो निरूपयति—**स्पर्श इति** । स्पर्शस्य पृथिव्यादिष्वपि सत्त्वादुष्ण इति । अभास्वरशुक्लस्य भूजलयोः सत्त्वाद्भास्वरेति । चन्द्रकिरणादावौष्ण्यं तदन्तःपातिसलिलशैत्येनाभिभूतं, मरकते पार्थिवस्पर्शेनाभिभूतं, चक्षुरादौ त्वनुद्भूतमिति न गृह्यते । एवं मरकतवह्न्यादौ पार्थिवरूपेणाभिभवाच्छुक्लभास्वरत्वाग्रहः । नैमित्तिकं

---

१ सजातीयग्रहणकृतमग्रहणमभिभवः ।

वह्निसंयोगसाध्यं द्रवत्वं स्वर्णे तद्दर्शनान्नासंभवः । तेजसो नित्यतादि पूर्ववज्जलस्येवेत्यर्थः । तथाहि तेजो द्विविधं नित्यमनित्यं च, नित्यं परमाणुरूपमनित्यं तदन्यत्सर्वं कार्यरूपम् । तदपि त्रिधा शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरमयोनिजमेव । तच्च सूर्यलोकादौ प्रसिद्धम् ॥ ४१ ॥

**इन्द्रियं नयनं वह्निस्वर्णादिर्विषयो मतः ॥**

तैजसमिन्द्रियमाह—**इन्द्रियमिति** । **नयनं** द्रव्यत्वे सति रूपादिपञ्चसु रूपमात्राभिव्यञ्जकं कृष्णकनीनिकाग्रवर्ति तैजसमिन्द्रियम् । तस्य विषयमाह—**वह्नीति** । आदिना जाठरवैद्युतपरिग्रहः । ननु सुवर्णं पीततागुरुताश्रयत्वान्नैमित्तिकद्रवत्वाच्च पार्थिवमस्त्विति चेन्न । सुवर्णं तैजसं, असति प्रतिबन्धकेऽत्यन्तानलसंयोगेऽप्यनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणत्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा घृतादीत्यनुमानेन तैजसत्वात् । अग्निसंयोगं विनानुच्छिद्यमानद्रवत्वाश्रये घृतादावतिव्याप्तिवारणायानलसंयोगेऽपीति । मन्दाग्निसंयोगेऽपि घृतादौ तदनुच्छेदादत्यन्तानलेति । तथापि घृतस्य जलमध्यस्थत्वे तदनुच्छेदादसतीति । एवं सुवर्णस्य तैजसत्वे पीततागुरुताश्रयत्वं तदन्तर्गतपार्थिवभागस्यैवेति बोध्यम् । पार्थिवरूपस्पर्शाभ्यामभिभवाच्चौष्ण्यभास्वरशुक्लयोरनुपलम्भः । अतएव नान्धकारे स्वर्णस्य तत्संयुक्तद्रव्यान्तरस्य च प्रत्यक्षमिति ॥—

**अपाकजोऽनुष्णाशीतस्पर्शस्तु पवने मतः ॥ ४२ ॥**
**तिर्यग्गमनवानेष ज्ञेयः स्पर्शादिलिङ्गकः ॥**

अथ वायुं निरूपयति—**अपाकज इति** । पवने अनुष्णाशीतः स्पर्शो मतः । ननु स पृथिव्यामपि वर्तते इत्यत आह—**अपाकज इति** । पृथिव्यां तु स पाकज इति भावः । अपाकजस्पर्श इत्युक्ते जलादावतिव्याप्तिस्तदर्थमनुष्णाशीत इति । एष पवनस्तिर्यग्गमनवान् ज्ञेयः । एष वायुः स्पर्शादिलिङ्गको ज्ञेयः । स्पर्शादीनि लिङ्गानि यस्य सः । आदिपदेन शब्दधृतिकम्पा गृह्यन्ते । शब्दस्पर्शौ विलक्षणौ बोध्यौ । धृतिश्च गुरुत्ववतोऽपि द्रव्यस्यापतनम् । कम्पः तृणादिचालनम् । एतैर्हि वायुरनुमीयते । वायुश्च यथा न प्रत्यक्षस्तथा वक्ष्यते । तथाच प्रयोगा दिनकर्या—योयं रूपवद्द्रव्यासमवेतः स्पर्शः स क्वचिदाश्रितः, स्पर्शत्वात्पृथिवीस्पर्शवत् ॥ १ ॥ असति रूपवद्द्रव्याभिघाते योऽयं पर्णादिषु शब्दसंतानः स स्पर्शवद्वेगवद्द्रव्यसंयोगजन्यः, अविभज्यमानावयवद्रव्यसंबन्धिशब्दसन्तानत्वात्

दण्डाभिहतभेरीशब्दसन्तानवत् ॥ २ ॥ नभसि तृणतूलमेघविसानादीनां धृतिः स्पर्शवद्वेगवद्द्रव्यसंयोगहेतुका, अस्मदाद्यनधिष्ठितद्रव्यधृतित्वान्नौकादिधृतिवत् ॥३॥ असति रूपवद्द्रव्याभिघाते तृणे कर्म स्पर्शवद्वेगवद्द्रव्याभिघातजन्यं विजातीय-कर्मत्वान्नदीपूराहतकाशादिकर्मवदिति ॥ ४ ॥ ४२ ॥—

## पूर्ववन्नित्यताद्युक्तं देहव्यापि त्वगिन्द्रियम् ॥ ४३ ॥

वायुं विभजते—पूर्ववदिति । वायोर्नित्यतादि पूर्ववज्जलवत्तेजोवद्वा उक्तं बोध्यमित्यर्थः । वायुर्द्विधा नित्योऽनित्यश्च । आद्यः परमाणुरूपः । अन्त्यः परमाणु-भिन्नोऽवयवी, स च त्रिधा शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरं वायवीयमयोनिजं वायुलोके पिशाचादीनां च प्रसिद्धमेव । वायवीयमिन्द्रियं दर्शयति—देहव्यापीति । त्वगिन्द्रियमित्येकं पदम् । त्वचिस्थितमिन्द्रियं त्वगिन्द्रियं, तद्देहव्यापि सकलं देहं व्याप्य वर्तते इत्यर्थः । शरीरव्यापकम् । द्रव्यत्वे सति रूपादिपञ्चसु स्पर्शमात्राभिव्यञ्जकमिन्द्रियं त्वग्वायवीयमित्यर्थः ॥ ४३ ॥

## प्राणादिस्तु महावायुपर्यन्तो विषयो मतः ॥

विषयं दर्शयति—प्राणादिरिति । प्राण एकोऽपि हृद्गुदनाभिकण्ठदेहेति-स्थानभेदादुच्छ्वासनिःश्वासान्नसमीकरणोत्क्रमणवलाधानेतिक्रियाभेदाच्च प्राणापान-समानोदानव्यानेति पञ्च संज्ञा लभते । तदादिः सर्वोपि वायुर्विषय इत्यर्थः ॥—

## आकाशस्य तु विज्ञेयः शब्दो वैशेषिको गुणः ॥ ४४ ॥

अथाकाशं निरूपयति—आकाशस्य त्विति । वैशेषिक इति । विशेष-गुणान्तरव्यावृत्त्यर्थम् । एतेनाकाशे प्रमाणं दर्शितम् । तथाहि । शब्दः पृथिव्या-द्यष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रितः अष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति द्रव्याश्रितत्वादिति । तेन शब्दाधिकरणमाकाशमिति सिद्धम् । तच्चैकं नित्यं विभु बोध्यम् ॥ ४४ ॥

## इन्द्रियं तु भवेच्छ्रोत्रमेकः सन्नप्युपाधितः ॥

तदीयशरीरविषययोरभावादिन्द्रियं दर्शयति—इन्द्रियमिति । आकाश एव श्रोत्रं शब्दग्राहकमिन्द्रियं भवेत् । नन्वेकस्याकाशस्य कथं नानाश्रोत्ररूपत्वमन्य-थैकत्रोत्पन्नः शब्दः सर्वैरपि श्रूयेत श्रोत्रस्यैक्यादित्याशङ्क्याह—एक इति । आकाश एकः सन्नप्युपाधितः कर्णशष्कुलीरूपाणामुपाधीनां भेदान्नाना श्रोत्रं भवेत् । तथाच चैत्रकर्णशष्कुल्यवच्छिन्नमाकाशं चैत्रश्रोत्रं मैत्रकर्णशष्कुल्य-वच्छिन्नं मैत्रश्रोत्रमिति व्यवस्थासंभवान्न सर्वशब्दश्रावणापत्तिरिति भावः ॥—

## जन्यानां जनकः कालो

कालं निरूपयति—जन्यानामिति। जन्यानां कार्याणां जनको निमित्तकारणं कालः। अद्य घटो भविष्यति, श्वः पटो भवितेत्यादिप्रतीतिबलात्तत्तत्कार्योत्पत्त्यधिकरणत्वेन कालस्य विषयीकरणादधिकरणस्य च निमित्तत्वावश्यंभावात्कालस्य कार्यतावच्छिन्नं प्रति निमित्तत्वमिति॥—

**जगतामाश्रयो मतः॥ ४५॥**

ननु काले एव किं प्रमाणमित्याशङ्क्य जगदाधारतया तत्सिद्धिमाह—**जगतामिति**। इदानीं घट इति प्रतीतिः सूर्यपरिस्पन्दादिकं विषयीकरोति। तत्र घटस्य सूर्यपरिस्पन्देन संबन्धो वाच्यः। स च न संयोगः तस्य द्रव्यमात्रवृत्तित्वात्। सूर्यपरिस्पन्दस्य च क्रियारूपतया संयोगासंभवात्। नापि समवायः सूर्ये समवेतस्य सूर्यस्पन्दस्य घटे समवायासंभवात्। नापि स्वसमवायिसंयोगः सूर्येण सह घटस्य संयोगादर्शनात्। किंतु स्वाश्रयसंयुक्तसंयोग एव। स्वं सूर्यपरिस्पन्दस्तदाश्रयः सूर्यस्तत्संयोगी कालस्तेन विभुना संयोगो घटस्येति सूर्यपरिस्पन्दघटयोः परम्परासंबन्धघटकतया कालः सिध्यति। नचाकाशस्यैव तद्धटकत्वमस्त्वितिवाच्यम्। आकाशदिगात्मनामविनिगमनादतिरिक्तकालस्यैवौचित्यात्॥४५॥

## परापरत्वधीहेतुः

तत्रैव प्रमाणान्तरमाह—**परापरत्वेर्ति**। परत्वापरत्वे कालिके ज्येष्ठकनिष्ठयोर्वर्तमाने गुणविशेषौ तद्बुद्धेरसाधारणं कारणं कालस्तदनभ्युपगमे ज्येष्ठे परत्वं कनिष्ठे चापरत्वं न बुध्येतेति भावः। तथाहि चैत्रो मत्तो ज्येष्ठ इति मैत्रवाक्ये चैत्रे ज्येष्ठत्वं मैत्रे च कनिष्ठत्वं प्रतीयते। तच्च परत्वापरत्वाधीनम्। परत्वं नाम बहुतरतपनक्रियासंबद्धत्वम्। अपरत्वं चाल्पतरतपनक्रियासंबद्धत्वम्। तत्र तपनक्रियाणां चैत्रमैत्रपिण्डयोश्च साक्षात्संयोगः समवायः स्वसमवायिसंयोगो वा न संभवति किंतु स्वसमवायिसंयोगिसंयोग एव परम्परासंबन्धस्तद्धटकश्च कालः। तत्र परत्वापरत्वयोश्चैत्रमैत्रपिण्डे समवायिकारणे, कालपिण्डसंयोगस्त्वसमवायिकारणम्, अपेक्षाबुद्धिर्निमित्तकारणम्। तत्र कालानभ्युपगमे कालपिण्डसंयोगरूपासमवायिकारणाभावेन परत्वाद्यनुत्पादात्कथं ज्येष्ठकनिष्ठयोस्तद्बुद्धिः स्यादिति परत्वापरत्वासमवायिसंयोगाश्रयतया कालसिद्धिः। नचासमवायिकारणं विनैव परत्वाद्युत्पत्तिरस्त्विति वाच्यम्। भावकार्यस्य सासमवायिकत्वनियमात्। नच

पिण्डगतरूपादेरेवासमवायित्वमस्त्विति वाच्यम् । नीरूपेऽपि वायौ तद्दर्शनात् । सचैको नित्यो विभुश्च कालो ग्राह्यः ॥—

## क्षणादिः स्यादुपाधितः ॥

ननु कालस्यैकत्वे क्षणदिनमासवर्षादिभेदः कथं तत्राह—क्षणादिरिति । एकोऽपि काल उपाधित उपाधिभेदात्क्षणादिव्यवहारविषयः स्यात् । तथाहि आदौ क्रिया ततो विभागस्ततः पूर्वसंयोगनाशस्तत उत्तरसंयोगोत्पत्तिरिति चतुर्थक्षणे उत्तरसंयोगो जायते, तत्र चतुर्णां क्षणानां क्रमादुपाधयः प्रदर्श्यन्ते । विभागप्रागभावावच्छिन्नं कर्म प्रथमक्षणोपाधिः । विभागकारणीभूतकर्मणस्तत्र जातत्वाद्विभागस्य चोत्तरक्षणे जनिष्यमाणत्वेन तत्प्रागभावस्य तदा सत्त्वात् ॥ १ ॥ पूर्वसंयोगावच्छिन्नविभागो द्वितीयक्षणोपाधिः । विभागस्य तत्र जातत्वात्संयोगस्य चोत्तरक्षणे नङ्क्ष्यमाणतया तदा वर्तमानत्वात् ॥ २ ॥ पूर्वसंयोगनाशावच्छिन्नोत्तरसंयोगप्रागभावस्तृतीयक्षणोपाधिः । पूर्वसंयोगस्य नष्टत्वादुत्तरसंयोगस्य च चतुर्थक्षणे जनिष्यमाणतया तत्प्रागभावस्य तदानीं सत्त्वात् ॥ ३ ॥ उत्तरसंयोगावच्छिन्नं कर्म चतुर्थक्षणोपाधिः, उत्तरसंयोगस्य तदा जातत्वात्तत्कारणकर्मणश्चाग्रे विनङ्क्ष्यमाणत्वेन तदानीं सत्त्वात् ॥ ४ ॥ एवमग्रेऽपि क्षणव्यवहारः, तत्संघगणनया च दिनमासादिव्यवहारः । एवं भूतभविष्यद्वर्तमानत्वव्यपदेशोऽपि तादृशपदार्थाधारतया तत्रौपचारिको बोध्यः ॥—

## दूरान्तिकादिधीहेतुर्नित्या चैका दिगुच्यते ॥ ४६ ॥

दिशं निरूपयति—दूरान्तिकादीति । भावप्रधानोऽत्र निर्देशः । दूरत्वान्तिकत्वे दैशिकपरत्वापरत्वे । असन्निहितत्वसन्निहितत्वे इति यावत् । तद्धियस्तज्ज्ञानस्य हेतुरसाधारणकारणं दिक् । सा चैका नित्या च । तथाहि । 'कुरुक्षेत्राद्धरिद्वारं निकटं काश्यपेक्षये'ति वाक्ये हरिद्वारेऽन्तिकत्वं काश्यां च दूरत्वं प्रतीयते । तत्रान्तिकत्वं नाम काशीनिष्ठसंयुक्तसंयोगापेक्षयाल्पतरसंयुक्तसंयोगवत्त्वम् । दूरत्वं च हरिद्वारनिष्ठसंयुक्तसंयोगापेक्षया वहुतरसंयुक्तसंयोगवत्त्वम् । परम्परासंवन्धघटका च दिगाश्रयणीया । काशीहरिद्वारे हि स्वनिष्ठदूरत्वान्तिकत्वयोः समवायिनी, ताभ्यां च दिक्संयोगोऽसमवायिकारणम् । अपेक्षाबुद्धिर्निमित्तम् । तत्र दिगनभ्युपगमे असमवायिसंयोगाभावेन परत्वापरत्वे न प्रतीयेयातामिति तद्बुद्धेरसाधारणं कारणं दिक् । नच काल एव तत्र हेतुरस्त्विति वाच्यम् । कालिक-

प्ररत्ववत्यपि दैशिकापरत्वदर्शनात् । सा चैका, नानात्वे गौरवात् । नित्या च ध्वंसाप्रतियोगित्वात् । विभ्वी च, सर्वत्र कार्योपलम्भात् ॥ ४६ ॥

## उपाधिभेदादेकापि प्राच्यादिव्यपदेशभाक् ॥

ननु दिश एकत्वे कथं प्राचीप्रतीच्यादिव्यवहृतिरत आह—उपाधीति । एकापि दिगुपाधिभेदात् प्राच्यादिव्यपदेशभाक् पूर्वादिनामतां भजते इत्यर्थः । तत्रोदयगिरिसन्निहितत्वं प्राच्यामुपाधिः, तद्व्यवहितत्वं प्रतीच्यां, मेरुसन्निहितत्वमुदीच्यां तद्व्यवहितत्वमवाच्याम् । यतो यन्मूर्तं यन्मूर्तादुदयगिरिसन्निहितं तत्ततः प्राची । एवमन्यदपि । तथाहि । हरिद्वारात्काशी प्राच्यामित्यस्य हरिद्वारनिष्ठोदयगिरिसंयुक्तसंयोगापेक्षयाल्पतरोदयगिरिसंयुक्तसंयोगवन्मूर्तवृत्तिः काशीत्यर्थः । काशीतः प्रतीच्यां हरिद्वारमित्यत्र काशीनिष्ठोदयगिरिसंयुक्तसंयोगापेक्षया बहुतरोदयगिरिसंयुक्तसंयोगवन्मूर्तवृत्ति हरिद्वारमित्यर्थः । एवं विन्ध्यादुदीच्यां हिमालय इत्यस्य विन्ध्यनिष्ठमेरुसंयुक्तसंयोगापेक्षयाल्पतरमेरुसंयुक्तसंयोगवन्मूर्तवृत्तिर्हिमालय इत्यर्थः । हिमालयादवाच्यां विन्ध्य इति हिमालयनिष्ठमेरुसंयुक्तसंयोगापेक्षया बहुतरमेरुसंयुक्तसंयोगवन्मूर्तवृत्तिर्विन्ध्य इत्यर्थः । एवमन्यत्रापि योज्यम् । परम्परासंबन्धघटका च दिगित्युक्तं प्राक् ॥—

## आत्मेन्द्रियाद्यधिष्ठाता करणं हि सकर्तृकम् ॥ ४७ ॥

आत्मानं निरूपयति—आत्मेति । असंकीर्णसुखदुःखादिमत्तयात्मनां नानात्वादात्मत्वं जातिः । सा च सुखादिसमवायिकारणतावच्छेदकतया सिद्ध्यति । ईश्वरे तज्जातिसत्त्वेपि धर्माधर्माद्यभावान्न सुखाद्युत्पत्तिः । नन्वात्मनि किं प्रमाणं, बाह्यं प्रत्यक्षमाभ्यन्तरं वा । न तावदाद्यम्, तस्य रूपवद्द्रव्यविषयतया त्वदभीष्टारूपिद्रव्यात्मगोचरत्वासंभवात् । नचान्त्यम्, अहं जानेऽहं पश्याम्यहं सुखीत्यादिरूपस्य तस्य देहेन्द्रियविषयतयाप्युपपत्तेस्तेनातिरिक्तात्मसाधनायोगादिति प्रतिपद्यमानं प्रतिदेहमिन्द्रियाद्यतिरिक्तात्मसत्त्वसाधकं प्रमाणमुपन्यस्यति—**इन्द्रियादीति** । आदिपदेन शरीरं गृह्यते । इन्द्रियाणां शरीरस्य चाधिष्ठाता परम्परया चैतन्यसंपादकः । ननु मास्त्वधिष्ठाता का क्षतिस्तदनभ्युपगम इत्यत आह—**करणं हीति** । हि यस्मात्करणं छिदादिसाधनं कुठारादि सकर्तृकं कर्त्रधिष्ठितमेव छिदादौ क्षमं दृष्टं नान्यथा । तथा चक्षुषा पश्यामि श्रोत्रेण शृणोमीत्यादिप्रत्ययादिन्द्रियाणां करणत्वं निर्विवादम् । करणस्य च सकर्तृकत्वनियमादधिष्ठात्रन-

भ्युपगमे चक्षुरादीनां दर्शनादिक्रियासु क्षमत्वं न स्यादित्यवश्यमधिष्ठाता तदतिरिक्तश्चेतनोऽभ्युपेय इति भावः ॥ ४७ ॥

## शरीरस्य न चैतन्यं मृतेषु व्यभिचारतः ॥

ननु स्वयमेव शरीरस्य क्रियासु प्रवृत्तिदर्शनात्तस्य चैतन्यमभ्युपेयम् । तथाच तस्यैव करणाधिष्ठातृत्वमप्यस्तु किमतिरिक्तात्माभ्युपगमेनेत्याशङ्क्याह—**शरीरस्येति** । यदि शरीरस्य चैतन्यं भवेद्भवतु तदधिष्ठातृत्वं, तदेव तु नास्ति, मृतेषु शरीरेषु सत्स्वपि चैतन्याभावदर्शनात् । तथाच परप्रयुक्तमेव तत्र चैतन्यं न स्वत इति तदतिरिक्त आत्मा स्वीकार्यः । किंच देहस्यात्मत्वेऽवयवोपचयापचयाभ्यां प्रतिक्षणध्वंसप्रतियोगिनो देहस्य संस्कारानाधारतया तदतिरिक्तस्य च नित्यस्य संस्काराधारस्यात्मनोऽनभ्युपगमेन बाल्ये विलोकितस्य वार्धके स्मरणानुपपत्तिः । देहप्रागभावध्वंसयोरदृष्टाधारात्माभावादकृताभ्यागमः कृतविप्रणाशश्च, बालस्य स्तन्यपाने प्रवृत्त्यनापत्तिश्च स्यादिति बोध्यम् ॥—

## इन्द्रियाणां तथात्वं चेदुपघाते कथं स्मृतिः ॥ ४८ ॥
## मनोऽपि न तथा ज्ञानाद्यनध्यक्षं तदा भवेत् ॥

ननु मास्तु देहस्य चेतनत्वमिन्द्रियाणां तु स्यादेव । नच तेषां चेतनत्वाभ्युपगमे कर्तृतापत्तिः । इष्टापत्तेः । नचैकत्र कर्तृत्वकरणत्वविरोधः, तत्र प्रमाणाभावात् । नच कुठारादीनामपि कर्तृत्वापत्तिस्तेषां चैतन्यानभ्युपगमात् । तथाच करणानामेव चैतन्यवत्तया कर्तृत्वोपपत्तौ किमतिरिक्तात्मनेत्याशङ्क्याह—**इन्द्रियाणामिति** । इन्द्रियाणां चक्षुरादीनां चेद्यदि तथात्वं चैतन्यं स्वीक्रियते तदा इन्द्रियाणामुपघाते नाशे सति स्मृतिः कथं स्यात् । सचक्षुषा दृष्टं दैवाज्जातान्ध्येन न स्मर्येत । अनुभवितुश्चक्षुषस्तदानीमभावात् । नच श्रोत्रेण स्मर्येतेति वाच्यम् । यत्रानुभवस्तत्र स्मरणमिति नियमेनान्येनानुभूतस्यान्येन स्मर्तुमशक्यत्वात् । अन्यथा चैत्रेणानुभूतं मैत्रेणापि स्मर्येतेति भावः । तथाच परप्रयुक्तमेवैषां चैतन्यं न स्वत इति तदतिरिक्त आत्मावश्यमिन्द्रियाणामागमापायेऽप्यनुसंधाता स्वीकार्यः। ननु मास्त्विन्द्रियाणां चैतन्यं, मनसस्तु स्यात्, न चात्रापि पूर्वोक्तदोषः, मनसो निरवयवद्रव्यतया नित्यत्वाभ्युपगमादित्याशङ्क्याह—**मनोऽपीति** । मनोऽपि **तथा** चेतनं न । प्रतिज्ञातेऽर्थे युक्तिं दर्शयति—**ज्ञानादीति** । यदि मनश्चेतनं स्यात्तदा ज्ञानादि ज्ञानसुखदुःखादि अनध्यक्षमप्रत्यक्षं भवेत् । तथाहि—मनसोऽणुत्वं

साधनीयम् । मनसश्चेतनत्वे ज्ञानसुखदुःखाद्याश्रयत्वं तस्यैवायातं, प्रत्यक्षे च महत्त्वं हेतुर्मनसि च तदभावात्तद्गतसुखादि परमाणुगतरूपादिवन्नोपलभ्येत। उपलभ्यते च सुखादिकमतः सिद्धस्तदाश्रयो मनोतिरिक्त आत्मेति भावः ॥४८॥—

**धर्माधर्माश्रयोऽध्यक्षो विशेषगुणयोगतः ॥ ४९ ॥**

इत्थमात्मनो देहेन्द्रियमनोतिरिक्तत्वं प्रसाध्य स्वरूपतस्तं निरूपयति—**धर्माधर्मेति**। नित्यस्यात्मनोऽदृष्टाधारतया नाकृताभ्यागमादिदोषोपीत्यर्थः। पुरा विप्रतिपद्यमानं प्रत्यात्मसत्त्वेऽनुमानं प्रमाणमुपन्यस्तमथ तत्संभावनावन्तं प्रति प्रत्यक्षमुपन्यस्यति—**अध्यक्ष इति**। विशेषगुणा ज्ञानसुखदुःखादयस्तद्योगतस्तत्संबन्धेनात्माध्यक्षः स्वदेहे प्रत्यक्षः, अहंजानेऽहंसुखीत्यादिप्रतीतेः ॥ ४९ ॥

**प्रवृत्त्याद्यनुमेयोऽयं रथगत्येव सारथिः॥**
**अहंकारस्याश्रयोऽयं मनोमात्रस्य गोचरः ॥ ५० ॥**
**विभुर्बुद्ध्यादिगुणवान्**

ननु परदेहे कथं स ज्ञायेत तत्राह—**प्रवृत्त्यादीति**। परदेहेऽयमात्मा प्रवृत्त्यादिनानुमीयते। प्रवृत्तिरत्र चेष्टा, सा च प्रयत्नसाध्या, प्रयत्नश्च चैतन्यानधिकरणदेहे न संभवतीति देहे दृष्टा प्रवृत्तिः स्वहेतुप्रयत्नाश्रयतया तत्रात्मानमनुमापयति। तथाहि इदं शरीरं सात्मकं हिताहितप्राप्तिपरिहारार्थक्रियावत्त्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा मृतशरीरमिति। तत्र दृष्टान्तमाह—**रथेति**। परप्रवर्तनामन्तरेणानुपपद्यमानया रथगत्या यथा सारथिरनुमीयते तद्वत्। दूराद्दृश्यमानोऽयं रथः सारथिमानुत्तरदेशसंयोगानुकूलक्रियावत्त्वाद्यन्नैवं तन्नैवं तदनधिष्ठितरथवदिति। **अहंकारो**ऽहमिति ज्ञानं तस्याश्रयोऽयमात्मा। तथाचाहं जानेऽहं सुखीत्यादिप्रत्ययस्य न देहेन्द्रियादिविषयत्वमित्यर्थः। ननु घटवदात्मा किं न विषयीक्रियेतेत्यत आह—**मनोमात्रस्येति**। मनःशब्दो मानसप्रत्यक्षवाची। रूपादिरहितत्वेन मनोभिन्नेन्द्रियाविषयतया सुखादिमत्त्वेन केवलमनोजन्यप्रत्यक्षविषयत्वादात्मनो न घटादिवत्प्रत्यक्षमित्यर्थः। स च मध्यमपरिमाणत्वे घटादिवदनित्यत्वापत्तेरणुत्वे सुखाद्यनध्यक्षत्वापत्तेः परिशेषाद्विभुर्ग्राह्यः। नच तथात्वे शरीराद्बहिरपि सुखादिभानप्रसङ्गः। आत्मनि सुखाद्युत्पत्ताववच्छेदकतया शरी-

---

१ प्रसक्तप्रतिषेधेऽन्यत्राप्रसङ्गात्परिशिष्यमाणे संप्रत्ययः परिशेषः.

रस्य निमित्तत्वात् । बुद्ध्यादीत्युक्तानुवादः स्पष्टतार्थः । वस्तुतो बुद्धेः प्रपञ्चनार्थं प्रसङ्गापादनं फलम् । बुद्धिः सर्वव्यवहारहेतुर्ज्ञानम् । आदिपदात्सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्कारसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागा गृह्यन्ते इति चतुर्दशगुणवानात्मा ॥ ५० ॥—

बुद्धिस्तु द्विविधा मता ॥

अनुभूतिः स्मृतिश्च स्यादनुभूतिश्चतुर्विधा ॥ ५१ ॥

अत्रैव प्रसङ्गाद्बुद्धिं विभजते—बुद्धिरिति । द्वैविध्यमुपपादयति—अनुभूतिरिति । संस्कारजन्यं ज्ञानं स्मृतिस्तद्भिन्नं ज्ञानमनुभूतिः । अनुभूतेः प्रमाऽप्रमादिविभागमुपरिष्टाद्वर्णयिष्यति, अत्र प्रमारूपतया तां विभजते—अनुभूतिरिति ॥ ५१ ॥

प्रत्यक्षमप्यनुमितिस्तथोपमितिशब्दजे ॥

घ्राणजादिप्रभेदेन प्रत्यक्षं षड्विधं स्मृतम् ॥ ५२ ॥

चातुर्विध्यमेवाह—प्रत्यक्षमिति । शब्दजा शाब्दी । एतासां चतसृणामनुभूतीनां क्रमाच्चत्वारि करणानि, प्रत्यक्षमनुमानमुपमानं शब्दश्चेति । तत्र प्रत्यक्षानुभूतिकरणं प्रत्यक्षम् । इन्द्रियत्वेनेन्द्रियजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षानुभूतिः । इन्द्रियजन्यरूपादावतिव्याप्तिवारणाय ज्ञानमितीन्द्रियं मनोरूपेन्द्रियजन्यानुमित्यादौ तद्वारणायेन्द्रियत्वेनेति । अनुमित्यादौ न मनस इन्द्रियत्वेन करणत्वमपि तु मनस्त्वेन । इन्द्रियत्वेन करणत्वं तु मनसः सुखादिसाक्षात्कार एव । ईश्वरप्रत्यक्षं तु न लक्ष्यं जीवप्रत्यक्षस्य प्रकृतत्वात् । तत्प्रत्यक्षं विभजते—घ्राणजादीति । घ्राणजं रासनं श्रौत्रं चाक्षुषं स्पार्शनं मानसमिति भेदेन ॥ ५२ ॥

घ्राणस्य गोचरो गन्धो गन्धत्वादिरपि स्मृतः ॥

तथा रसो रसज्ञायास्तथा शब्दोऽपि च श्रुतेः ॥ ५३ ॥

तत्र घ्राणेन्द्रियसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं घ्राणजम् । तद्दर्शयति—घ्राणस्येति । गन्ध उद्भूतः । गन्धत्वं तद्गता जातिः । आदिपदात्सौरभासौरभादि । एतत्सर्वं घ्राणस्य गोचरः ग्राह्यः । रसनेन्द्रियसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं रासनम् । तदाह—तथेति । रस उद्भूतः । तथा रसत्वं मधुराम्लादिश्च रसज्ञाया रसनाया गोचरः ।

श्रोत्रसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं **श्रौत्रम्**। तद्दर्शयति—**तथेति**। शब्दः प्रान्तभवः। तथा शब्दत्वं मन्द्रतारादिविशेषश्च श्रुतेः श्रोत्रेन्द्रियस्य विषयः ॥ ५३ ॥

**उद्भूतरूपं नयनस्य गोचरो द्रव्याणि तद्वन्ति पृथक्त्वसंख्ये ॥**
**विभागसंयोगपरापरत्वे स्नेहद्रवत्वं परिमाणयुक्तम् ॥५४॥**

चक्षुरिन्द्रियसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं **चाक्षुषं** प्रत्यक्षम्। तन्निरूपयति—**उद्भूतरूपमिति**। तप्तोदकाद्यनुगततेजोरूपाग्रहादुद्भूतेति। तद्वन्ति उद्भूतरूपवन्ति द्रव्याण्यपि नेत्रगोचराः। **परिमाणयुक्तं** परिमाणमपि ह्रस्वदीर्घादिकं नेत्रग्राह्यम् ॥ ५४ ॥

**क्रियाजातिर्योग्यवृत्तिः समवायश्च तादृशः ॥**

**क्रिया** कर्म **जातिः** सामान्यम्। अयोग्यवृत्तेः क्रियाया जातेश्चाग्रहणाद्योग्यवृत्तिरिति विशेषणम्। एतच्च पृथक्त्वादीनामपि बोध्यम्। अयोग्यवृत्तीनां तेषामप्यग्रहणात् तादृशो योग्यवृत्तिः समवायोपि नयनगोचरः ॥—

**गृह्णाति चक्षुः संयोगादालोकोद्भूतरूपयोः ॥ ५५ ॥**

चाक्षुषज्ञाने सहकारिणं दर्शयति—**गृह्णातीति**। चक्षुर्नेत्रं आलोकोद्भूतरूपयोः संयोगात्संबन्धात्पदार्थं गृह्णाति। अतोऽन्धकारे न चाक्षुषं, तत्रालोकसंयोगाभावात्, नापि पिशाचादिचाक्षुषं तत्रोद्भूतरूपाभावात्। आलोकस्य घटेन संयोगः संबन्धः। घटसमवेतादिना तु संयुक्तसमवायादिः। उद्भूतरूपस्य तु घटेन समवायः। घटसमवेतादिना तु संयुक्तसमवायादिः। तथाच चाक्षुषमात्रं प्रत्यालोकोद्भूतरूपयोर्हेतुत्वं बोध्यम् ॥ ५५ ॥

**उद्भूतस्पर्शवद्द्रव्यं गोचरः सोऽपि च त्वचः ॥**
**रूपान्यच्चक्षुषो योग्यं**

त्वगिन्द्रियसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं **स्पार्शनम्**। तदाह—**उद्भूतेति**। उद्भूतस्पर्शाश्रयं द्रव्यं सोऽप्युद्भूतस्पर्शोऽपि, चकारात्स्पर्शत्वं शीतोष्णादिश्च त्वचो गोचरः। किंच रूपान्यत्, रूपरूपत्वशुक्लत्वादिभिन्नं यच्चक्षुषो योग्यं पृथक्त्वादिसमवायान्तं ग्राह्यमुक्तं तदपि त्वचो गोचर इत्यर्थः ॥—

रूपमत्रापि कारणम् ॥ ५६ ॥

द्रव्याध्यक्षे

अथ बहिर्द्रव्यप्रत्यक्षमात्रे हेतुमाह—रूपमिति । अत्र द्रव्याध्यक्षे इत्यग्रिमश्लोकस्थं पदं पूर्वान्वयि । यथा चक्षुरिन्द्रियजन्यद्रव्यप्रत्यक्षे रूपं कारणं तथात्रापि त्वगिन्द्रियजन्यद्रव्यप्रत्यक्षेपि रूपं कारणम् । रूपवतामेव घटादीनां त्वाचचाक्षुषदर्शनान्नीरूपगगनादौ तदभावदर्शनात् । नच स्पर्शस्यैव कारणत्वं, प्रभाया अप्रत्यक्षत्वापत्तेः । नचोभयोः कारणत्वं, गौरवादतो रूपस्यैव कारणत्वम् । अतो वायौ स्पर्शसत्त्वेऽपि रूपाभावादप्रत्यक्षत्वमिष्टमिति **प्राञ्चः । नव्यास्तु** वायुं स्पृशामीत्यबाधितप्रतीतिबलाद्वायोस्त्वाचं स्वीक्रियते । तत्र स्पर्शस्य कारणत्वम् । तथाच द्रव्यस्य चाक्षुषे रूपं त्वाचे स्पर्शः कारणमिति न प्रत्यक्षमात्रे रूपस्य कारणत्वमित्याहुः ॥ ५६ ॥—

त्वचो योगो मनसा ज्ञानकारणम् ॥

अथ ज्ञानमात्रे हेतुमाह—त्वच इति । मनसा सह त्वचो योगो ज्ञानमात्रे कारणम् । अणुपरिमाणं हि मनो यदा त्वचं त्यक्त्वा पुरीतति प्रविशति तदा सुषुप्तौ किमपि ज्ञानं न जायते । यदा च ततो निःसृत्य त्वचा युज्यते तदा यथायोग्यं ज्ञानानि जायन्ते, अतो ज्ञायते त्वङ्मनोयोगस्य ज्ञानमात्रं प्रति हेतुत्वम् । अन्यथा सुषुप्तावपि ज्ञानं प्रसज्येत । नच त्वङ्मनोयोगस्य ज्ञानमात्रहेतुत्वे चाक्षुषादिकाले त्वाचमपि स्यादिति वाच्यम् । तत्रानुभवानुरोधेन चाक्षुषादिसामग्र्यास्त्वाचादिप्रतिबन्धकत्वकल्पनात् ॥—

मनोग्राह्यं सुखं दुःखमिच्छा द्वेषो मतिः कृतिः ॥५७॥

मानसं प्रत्यक्षमाह—मनोग्राह्यमिति । मतिर्ज्ञानं कृतिर्यत्नः सुखादिकं मनोग्राह्यं मनोजन्यप्रत्यक्षविषय इत्यर्थः । एवं सुखत्वादि सुखादिमांश्चात्मापि मनोग्राह्य इति बोध्यम् ॥ ५७ ॥

ज्ञानं यन्निर्विकल्पाख्यं तदतीन्द्रियमुच्यते ॥

मतिः कृतिरिति ज्ञानस्य मानसप्रत्यक्षविषयत्वमुक्तं तत्र विशेषमाह—ज्ञानमिति । ज्ञानं हि द्विधा निर्विकल्पकं सविकल्पकं च । तत्र निष्प्रकारकं ज्ञानं निर्विकल्पकम् । सप्रकारकं ज्ञानं सविकल्पकम् । तथाहि घटचक्षुःसन्निकर्षे

घटोऽयमिति घट-घटत्व-वैशिष्ट्य[1]ावगाहि ज्ञानं जायते तत्सविकल्पं, घटमहं जानामीत्यनु[2]व्यवसायेन चेदं विषयीक्रियते । विशिष्टज्ञाने च विशेषणज्ञानं ( विशेष्यज्ञानं च ) कारणमिति सविकल्पज्ञानात्प्राग् घटघटत्वमात्रावगाहि तद्वैशिष्ट्यानवगाहि ज्ञानमपेक्षितं तदेव निर्विकल्पम् । ननु घटघटत्वसन्निकृष्टमिन्द्रियं तद्वैशिष्ट्यमप्यवगाहतामितिचेन्न । तस्य वैशिष्ट्यावगाहित्वे सविकल्पतापत्त्या तत्रापि विशेषणादिज्ञानापेक्षायामनवस्थापत्तेः । ततः प्राथमिकं ज्ञानं वैशिष्ट्यानवगाहि स्वीकार्यम् । तादृशस्य चानुव्यवसायादर्शनादतीन्द्रियत्वमिति ।—

**महत्त्वं षड्विधे हेतुरिन्द्रियं करणं मतम् ॥ ५८ ॥**
**विषयेन्द्रियसंबन्धो व्यापारः सोऽपि षड्विधः ॥**

निरूपिते षड्विधप्रत्यक्षे हेतुमाह—**महत्त्वमिति** । महत्त्वं परिमाणविशेषः । परमाणौ तदभावान्न प्रत्यक्षम् । गगनादौ तत्सत्वेऽपि रूपाद्यभावान्न प्रत्यक्षम् । महत्त्वस्यालोकवद्द्रव्यतत्समवेतादिप्रत्यक्षे सन्निकर्षा उन्नेयाः । **इन्द्रियमिति** । इन्द्रियं षड्विधप्रत्यक्षे करणं मतम् । विशेषतश्चाक्षुषे चक्षुस्त्वाचे त्वगित्याद्युक्तं, सामान्यतः प्रत्यक्षे इन्द्रियमित्यर्थः । ननु करणं नाम असाधारणं कारणं तत्रासाधारण्यं नाम व्यापारवत्त्वमिति वक्तव्यम् । तदिन्द्रियेषु को नाम व्यापारो यद्वत्तया तेषां करणत्वमभिलप्यते इत्याशङ्क्याह—**विषयेन्द्रियेति** । अत्र व्यापारपदस्य सन्निकर्षमात्रेऽभिप्रायः[3] । अन्यथा [ तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनको व्यापार इत्युक्ते ] श्रोत्रसंबन्धेऽव्याप्तिप्रसङ्गस्तत्संबन्धस्य समवायस्य नित्यसंबन्धत्वेन तदजन्यत्वात् । संनिकर्षं विभजते—**सोऽपीति** । संयोगः, संयुक्तसमवायः, संयुक्तसमवेतसमवायः, समवायः, समवेतसमवायः, विशेषणविशेष्यभावश्चेति षड्विधः सन्निकर्षः ॥ ५८ ॥—

**द्रव्यग्रहस्तु संयोगात्संयुक्तसमवायतः ॥ ५९ ॥**
**द्रव्येषु समवेतानां तथा तत्समवायतः ॥**
**तत्रापि समवेतानां शब्दस्य समवायतः ॥ ६० ॥**
**तद्वृत्तीनां समवेतसमवायेन च ग्रहः ॥**
**विशेषणतया तद्वदभावानां ग्रहो भवेत् ॥ ६१ ॥**

---

१ संसर्गः । २ ज्ञानविषयकं ज्ञानमनुव्यवसायात्मकज्ञानम् । ३ तात्पर्यम् ।

तत्र प्रथममुदाहरति—**द्रव्यग्रह इति**। द्रव्यग्रहो द्रव्यप्रत्यक्षं **संयोगादि**-न्द्रियसंयोगात्सन्निकर्षाद्भवति । तत्रापि चाक्षुषे द्रव्यप्रत्यक्षे चक्षुःसंयोगः, स्पार्शने त्वक्संयोग इति विशेषः। **द्वितीयमाह—संयुक्तसमवायत इति**। द्रव्येषु घटादिषु समवेतानां रूपादिगुणानां चलनपतनादिक्रियाणां घटत्वादिसामान्यानां वा ग्रहः **संयुक्तसमवायतः** सन्निकर्षाद्भवति । चक्षुरादि-संयुक्ते घटादौ तेषां समवायात् । तत्रापि द्रव्यसमवेतानां चाक्षुषं चक्षुःसंयुक्तसमवायात्, स्पार्शनं त्वक्संयुक्तसमवायात्, घ्राणजं घ्राणसंयुक्तसमवायादित्यादिविशेष ऊह्यः। **तृतीयमाह—तथेति**। तथा पूर्ववत् । तत्रापि द्रव्यसमवेतेषु गुणादिष्वपि समवेतानां रूपत्वनीलत्वादिसामान्यानां ग्रहणं **तत्समवायतः** इन्द्रियाणां संयुक्तसमवेतसमवायसन्निकर्षाज्जायते । इन्द्रियसंयुक्ते द्रव्ये समवेतगुणादिषु सामान्यानां समवायात् । अत्रापि विशेषः पूर्ववत् । **चतुर्थमाह—शब्दस्येति** । शब्दस्य समवायतः समवायसन्निकर्षेण ग्रहणम् । शब्दो हि श्रोत्रेण गृह्यते श्रोत्रं च कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नं नभ एव । शब्दश्चाकाशगुणः गुणगुणिनोश्च संबन्धः समवाय इत्युक्तं प्राक् । **पञ्चममाह—तद्वृत्तीनामिति**। शब्दसमवेतानां शब्दत्वादीनां प्रत्यक्षं समवेतसमवायेन जायते । श्रोत्रसमवेते शब्दे तेषां समवायात् । अथ षष्ठं सन्निकर्षमाह—**विशेषणतायेति** । अभावग्रहो **विशेषणताख्य**-सन्निकर्षेण भवति । भूतले घटो नास्तीत्यत्र भूतलाधिकरणकघटप्रतियोगिकाभावोऽधिकरणसंबद्धेन्द्रियेण गृह्यते । तत्र सन्निकर्षं विना ग्रहणायोगादिन्द्रियस्याभावेन सन्निकर्षो वाच्यः । स च न संयोगः संभवति । अभावस्याद्रव्यत्वान्नापि समवायः, अयुतसिद्ध्यभावात् । नापि संयुक्तसमवायादिरिन्द्रियसंयुक्ते भूतलादावभावस्य समवायाद्यभावात्किंतु परिशेषात्तत्र विशेषणविशेष्यभाव एव संनिकर्षः । तत्रापि भूतले घटाभाव इत्युल्लेखे भूतलं विशेषणमभावश्च विशेष्यः, घटाभाववद्भूतलमित्युल्लेखे भूतलस्य विशेष्यत्वमभावस्य विशेषणत्वमिति बोध्यम् । विशेषणविशेष्यभावश्च विशेषणविशेष्यस्वरूपमेव नातिरिक्तः संबन्धः । तत्रापि भूतलादौ घटाभावादिः संयुक्तविशेषणतया गृह्यते । रूपादौ रसाद्यभावस्तु संयुक्तसमवेतविशेषणतया, रूपत्वादौ रसत्वाद्यभावः संयुक्तसमवेतसमवेतविशेषणतयेत्याद्यूहनीयम् ॥ ५९–६१ ॥

**यदि स्यादुपलभ्येतेत्येवं यत्र प्रसज्यते ॥**
**प्रत्यक्षं समवायस्य विशेषणतया भवेत् ॥ ६२ ॥**

ननु यदीन्द्रियेण विशेषणतासन्निकर्षेणाभावो गृह्यते तदान्धकारेऽपि घटाभाव-
चाक्षुषं किं न जायते तथा स्तम्भे पिशाचात्यन्ताभावस्यापि चाक्षुषं स्यात्तत्रेन्द्रिय-
संबद्धविशेषणतायाः सत्त्वादित्याशङ्क्याह—**यदीति** । यदि प्रतियोगी स्यात्तदोपल-
भ्येतेत्येवं यत्र प्रसज्यते प्रसञ्जयितुं शक्यते तत्रैवाभावग्रहो नान्यत्रेति भावः । अय-
मर्थः—भूतलादौ घटादिज्ञाने तदभावज्ञानं न जायते, तेन प्रतियोग्यनुपलब्धि-
रभावग्रहे सहकारिणी । क्वचित्तत्सत्त्वेऽप्यभावाग्रहात्तस्या योग्यत्वमपेक्षितं, तच्च
**प्रतियोगिसत्त्वप्रसञ्जनप्रसञ्जितप्रतियोगिकत्वं** प्रतियोगिनोऽभावप्रतियो-
गिनो घटादेर्यदि स्यादिति सत्त्वप्रसञ्जनेन प्रसञ्जितस्तदोपलभ्येतेत्युपलब्धिरूपः प्र-
तियोगी यस्याः सानुपलब्धिरभावप्रत्यक्षे हेतुः । तथाचालोकवति भूतलादौ तथा
प्रसञ्जयितुं शक्यतयाऽभावो गृह्यते । अन्धकारे तु न तथा प्रसञ्जयितुं शक्यते,
तत्र घटसत्त्वेऽप्यालोकाभावेन तदनुपलम्भसमर्थनात् । अतो न तत्र घटाभावचा-
क्षुषम् । त्वाचं तु तदभावप्रत्यक्षं तमस्यपि भवत्येव । यद्यत्र घटः स्यात्तदा त्वचा
भूतलमिवास्प्रक्ष्यत न स्पृश्यतेऽतो नास्तीत्यापादनसंभवात् । एवं स्तम्भे पिशाचा-
त्यन्ताभावोऽपि न चक्षुषा गृह्यते । यद्यत्र पिशाचः स्यात्तदा स्तम्भ इवाद्रक्ष्यतेति
प्रसञ्जयितुमशक्यत्वात्तत्र पिशाचसत्त्वेऽपि नीरूपद्रव्यतया तदनुपलम्भसमर्थनसं-
भवात् । स्तम्भे पिशाचान्योन्याभावस्तु दृश्यत एव यदि स्तम्भे पिशाचत्वं स्यात्तदा
स्तम्भत्वमिवोपलभ्येत योग्यवृत्तिजातीनामपि योग्यत्वादित्यापादनात् । एवं रूपाद्य-
भावो नेत्रेण गन्धाभावो घ्राणेन रसाभावो रसनया शब्दाभावः श्रोत्रेण सुखाद्य-
भावो मनसा गृह्यत इत्यादि बोध्यम् । एतेनानुपलब्धेः पृथक् प्रमाणत्वमपास्तम् ।
अधिकरणग्रहणार्थमावश्यकेनानुपलब्धिसहकृतेन्द्रियेणैवाभावग्रहोपपत्तावनुपलब्धेः
पृथक्प्रमाणत्वकल्पनस्यानुचितत्वादिति । विशेषणतासन्निकर्षस्य स्थलान्तरमाह—
**प्रत्यक्षमिति** । नीलो घट इत्यत्र नीलविशिष्टं घटं गृह्णच्चक्षुर्घटनीलं च तद्वैशिष्ट्यं
चावगाहते । तत्र घटं द्रव्यं संयोगेन, तद्गतनैल्यं च संयुक्तसमवायेन गृह्णाति ।
समवायरूपं च वैशिष्ट्यं केन सन्निकर्षेण गृह्णातीति शोध्यम् । तत्र संयोगाद्यसंभवा-
द्विशेषणतासंबन्धः परिशिष्यते । तत्रापि घटादौ नीलादिसमवायः संयुक्तविशे-
षणतया, नीलादौ नीलत्वादिसमवायः संयुक्तसमवेतविशेषणतयेत्यादि प्राग्व-
द्योज्यम् ॥ ६२ ॥

**अलौकिकस्तु व्यापारस्त्रिविधः परिकीर्तितः ॥**
**सामान्यलक्षणो ज्ञानलक्षणो योगजस्तथा ॥ ६३ ॥**

लौकिकालौकिकभेदेन प्रत्यक्षं द्विधा। तत्राद्यं षोढा सन्निकर्षजन्यं निरूपितम्। अथ द्वितीयं निरूपयितुं तद्धेतुसन्निकर्षं विभजते—**अलौकिक इति**। तदेवाह—**सामान्येति** ॥ ६३ ॥

**आसत्तिराश्रयाणां तु सामान्यज्ञानमिष्यते ॥**
**तदिन्द्रियजतद्धर्मबोधसामग्र्यपेक्ष्यते ॥ ६४ ॥**

तत्र प्रथमं दर्शयति—**आसत्तिरिति**। **सामान्यज्ञानं** सामान्यविषयकं ज्ञान**माश्रयाणां** सामान्याश्रयाणामासत्तिः प्रत्यासत्तिरित्यर्थः। तथाच सामान्यं लक्षणं स्वरूपं यस्य स सामान्यलक्षणः सन्निकर्ष इत्यर्थः। एकत्र धूमे वह्निसंबन्धं गृहीतवतो नरस्य धूमो वह्निव्याप्यो न वेति संशयो जायते तन्निवारणाय तर्क उपदिश्यते इत्यविवादम्। तत्र सन्निकृष्टधूमस्य संयोगेनोपस्थितिरितरधूमानां वह्नीनां च केन सन्निकर्षेणोपस्थितिरिति विवेक्तव्यम्। उपस्थित्यभावे च संशय एव नोपपद्येत लौकिकस्य च संयोगादेस्तत्रासंभवादलौकिकः स आश्रीयते। तथाहि। सन्निकृष्टधूमवह्निव्यक्तिनिष्ठधूमत्ववह्नित्वसामान्यज्ञानलक्षणसामान्यप्रत्यासत्त्या धूमत्ववह्नित्वाश्रयाणां सकलधूमवह्निव्यक्तीनामुपस्थितिर्जायते ततः संशयोपपत्तिः। एवं धूलीपटलेऽपि धूमभ्रमस्थले भ्रमरूपधूमत्वज्ञानेन सकलधूमभानम्। एवं यत्रैको घटादिर्येन संबन्धेन यत्र ज्ञातस्तदनन्तरं तेन संबन्धेन तद्घटवतां सर्वेषां भानमपि सामान्यलक्षणयैव। सामान्यं च तत्र घट एव, तज्ज्ञानेन तदाश्रयाणामुपस्थितिः। ननु सामान्यमेव प्रत्यासत्तिरस्तु किं सामान्यज्ञानपर्यन्तधावनेन। तथा चैकत्र गृहीतधूमत्वादिसामान्यरूपसन्निकर्षेण सकलतदाश्रयधूमादिज्ञानं सुसंपादमिति चेन्न। नित्यसामान्यस्थले तन्निर्वाहेऽप्यनित्यसामान्यस्थले तदनिर्वाहात्। तथाहि। घटनाशेपि घटवतः स्मरणे सति सकलघटवतां भानं जायते तन्न जायेत। तत्र घटरूपसामान्यस्य नाशात्। मन्मते तु तन्नाशेपि स्मरणरूपतज्ज्ञानसन्निकर्षेण तदाश्रयाणां भानमुपपद्यते। ननु चक्षुःसंयोगादिकं विनापि यत्र सामान्यज्ञानं तत्र तदाश्रयाणां किमिति न चाक्षुषं प्रत्यक्षं जायते तत्राह—**तदिन्द्रियजेति**। तानि चक्षुरादीनीन्द्रियाणि तेभ्यो जायते यः तद्धर्मबोधः तेषां सामान्याश्रयाणां धर्मः सामान्यं तस्य बोधो ज्ञानं तस्य सामग्री चक्षुरादिसंयोगा-

लोकसंयोगादिका सा अपेक्ष्यते बहिरिन्द्रियेण सामान्यलक्षणया ज्ञाने जननीये इति शेषः । तेन नान्धकारादौ चक्षुरादिना तत्प्रसंगः । लौकिकचाक्षुषादिकमलौकिकचाक्षुषादेर्व्यापकम् । व्यापकाभावे व्याप्याभाव उचित एवेति भावः ॥६४॥

**विषयी यस्य तस्यैव व्यापारो ज्ञानलक्षणः ॥**

द्वितीयमलौकिकसन्निकर्षमाह—**विषयीति** । स बोधो यस्य विषयी यद्विषयकः तस्यैव बोधविषयस्यैव प्रत्यासत्तिर्ज्ञानलक्षणो व्यापारः सन्निकर्षो द्वितीय इत्यर्थः । सामान्यलक्षणा तु ज्ञानविषयाश्रयाणां प्रत्यासत्तिर्ज्ञानलक्षणा तु ज्ञानविषयस्यैवेति भावः ॥

**योगिनो द्विविधाः प्रोक्ता युक्तयुञ्जानभेदतः ॥ ६५ ॥**
**युक्तस्य सर्वदा भानं चिन्तासहकृतोऽपरः ॥**

**इति प्रत्यक्षम् ॥**

योगजधर्मेण योगिन एव पश्यन्ति नान्य इति तद्वैविध्यं दर्शयति—**योगिन** इति ॥६५॥ इति प्रत्यक्षम् ॥

**व्यापारस्तु परामर्शः करणं व्याप्तिधीर्भवेत् ॥**
**अनुमायां**

अथानुमितिं निरूपयति—**व्यापारस्त्विति** । परामर्शत्वेन परामर्शजन्यं ज्ञानमनुमितिः परामर्शजन्ये परामर्शप्रत्यक्षादावतिव्याप्तिवारणाय परामर्शत्वेनेति । परामर्शप्रत्यक्षादौ विषयत्वेन हेतुत्वं न परामर्शत्वेनेति नातिप्रसङ्गः । अनुमितिकरणमनुमानम् । व्यापारवच्च कारणं करणमिति व्यापारप्रदर्शनपूर्वकमनुमितिकरणमाह—**व्यापारस्त्विति** । **अनुमायाम**नुमितिरूपानुभूतौ **परामर्शः व्यापारः, व्याप्तिधी**र्व्याप्तिज्ञानं **करणं** भवेत् । अत्रेयं प्रक्रिया—देवदत्तो हि महानसादौ धूमवह्निसाहचर्यं नियमेनोपलभ्य यत्र धूमस्तत्राग्निरिति धूमेऽग्नेर्व्याप्तिं गृह्णाति कदाचिद्गिरिनिकटमुपागतस्तद्गतेऽग्नौ संदिहानस्तत्राभ्रंलिहधूमरेखावीक्षणोद्बुद्धसंस्कारात्पूर्वंगृहीतां[1] धूमो वह्निव्याप्य इति व्याप्तिं स्मरति । इदं व्याप्तिज्ञानम् । ततो वह्निव्याप्यधूमवानयं गिरिरि[2]त्यनुसंधत्ते । अयं लिङ्गपरामर्शः । ततो वह्नि-

१ एकसंबन्धिज्ञानमपरसंबन्धिस्मारकम्. २ वह्निनिरूपितव्याप्त्याश्रयधूमनिष्ठाधेयतानिरूपिताधिकरणताशाली पर्वतः.

मानयं गिरिरिति स्वार्थानुमितिरुत्पद्यते इति तदत्र व्याप्तिस्मरणरूपं व्याप्तिज्ञानं परामर्शं द्वारीकृत्यानुमितिं जनयद्व्यापारवत्कारणतया करणं भवति । परामर्शस्तु व्याप्तिज्ञानतो जातस्तज्जन्यानुमितिमव्यवधानेन जनयन्व्यापारतां भजत इति । नच परामर्शस्यैव करणत्वं तत्र व्यापाराभावात् ।

**ज्ञायमानं लिङ्गं तु करणं नहि ॥ १ ॥**
**अनागतादिलिङ्गेन न स्यादनुमितिस्तदा ॥**

प्राचीना व्याप्यत्वेन ज्ञायमानं लिङ्गमेव स्वज्ञानं द्वारीकृत्यानुमितौ करणमिति वदन्ति । तद्दूषयति—**ज्ञायमानमिति** । ज्ञायमानमग्न्यादिव्याप्यत्वज्ञानविषयीक्रियमाणं लिङ्गं धूमादिकमग्न्याद्यनुमितौ करणं न ॥ १ ॥ प्रतिज्ञातेऽर्थे युक्तिं दर्शयति—**अनागतादीति** । अनागतं भावि आदितोऽतीतं गृह्यते । इदं स्थलं वह्निमद्भविष्यति भाविधूमवत्त्वादिदं वह्निमदभूदतीतधूमवत्त्वादिति विधयातीतानागतलिङ्गतोऽप्यनुमितिर्जायते । यदि च ज्ञायमानलिङ्गस्य करणत्वं स्यात्तदा सा न जायेत । तदानीमनुमितिकरणस्य लिङ्गस्याभावात् । मन्मते तु लिङ्गाभावेऽपि तज्ज्ञानसत्त्वाद्व्याप्तिज्ञानसंभवादनुमित्युपपत्तिः ॥ १ ॥—

**व्याप्यस्य पक्षवृत्तित्वधीः परामर्श उच्यते ॥ २ ॥**

ननु कः परामर्शो यं व्यापारमादाय व्याप्तिज्ञानमनुमितिं जनयतीत्याशङ्क्य परामर्शं लक्षयति—**व्याप्यस्येति** । व्याप्यस्य व्याप्त्याश्रयस्य पक्षवृत्तित्वधीः पक्षवृत्तित्वज्ञानं पक्षेण सह वैशिष्ट्यावगाहिज्ञानं परामर्श इत्युच्यते । स च क्वचित्पक्षविशेष्यकः । यथा वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वत इति । क्वचिद्व्याप्यविशेष्यकः यथा पर्वतेऽग्निव्याप्यधूम इति परामर्शद्वैविध्यादनुमितेरपि द्वैविध्यं, तत्राद्यादग्निमान्पर्वत इति पक्षविशेष्यिका । द्वितीयात्पर्वतेऽग्निरितिसाध्यविशेष्यिका द्विविधादपि परामर्शात्पक्षविशेष्यिकैवानुमितिरिति तु **नव्याः** ।

**व्याप्तिः साध्यवदन्यस्मिन्नसंबन्ध उदाहृतः ॥ ३ ॥**

ननु व्याप्तिः का यदाश्रयतया लिङ्गस्य व्याप्यत्वमभिधीयत इत्याशङ्क्य व्याप्तिं निरूपयति—**व्याप्तिरिति** । साध्यं वह्न्यादिस्तद्वान्महानसादिस्तदन्यो जलह्रदादिस्तदवृत्तित्वं धूमस्येति लक्षणसमन्वयः धूमवान्वह्नेरित्यादौ साध्यवदन्यस्मिंस्तप्तायःपिण्डादौ वह्नेः सत्त्वान्नातिव्याप्तिः । ननु समवायेन वह्निमतोवह्न्यवयवादन्यस्मिन् महानसे वर्तमानत्वाद्धूमस्याव्याप्तिरिति वाच्यम् । साध्य-

तावच्छेदकसंबन्धेन साध्यवत्त्वस्य विवक्षणात्। तथा च प्रकृते साध्यतावच्छेदकसंबन्धः संयोगस्तेन संबन्धेन साध्यवानेव महानसादिर्न साध्यवदन्य इति तद्वृत्तिधूमे नाव्याप्तिः। साध्यवदन्यश्च साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यवत्प्रतियोगिताकभेदवान्बोध्यः। तेन साध्यवन्महानसादिप्रतियोगिकान्यत्वस्य धूमादिमति पर्वतादौ सत्त्वेऽपि नाव्याप्तिः। हेतुतावच्छेदकसंबन्धेन साध्यवदन्यावृत्तित्वं वाच्यम्। तेन साध्यवदन्यस्मिन्धूमावयवे समवायेन धूमस्य वृत्तित्वेऽपि नाव्याप्तिः, हेतुतावच्छेदको यः संयोगसंबन्धस्तेनावृत्तेः। नचैवमपि धूमवान्वह्नेरित्यत्र व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिः, साध्यवदन्यस्मिन्ह्रदे वह्नेरवृत्तित्वादिति वाच्यम्। साध्यवदन्यावृत्तित्वमित्यत्रावृत्तित्वस्य वृत्तित्वसामान्याभावरूपस्य विवक्षणात्। वृत्तित्वसामान्याभावो नाम तादृशवृत्तित्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः। प्रकृते च वह्नौ साध्यवदन्यह्रदवृत्तित्वाभावसत्त्वेऽपि साध्यवदन्यतप्तायःपिण्डवृत्तित्वसत्त्वान्न तादृशवृत्तित्वसामान्याभाव इति नातिव्याप्तिः॥ ३॥

**अथवा हेतुमन्निष्ठविरहाप्रतियोगिना॥**
**साध्येन हेतोरैकाधिकरण्यं व्याप्तिरुच्यते॥ ४॥**

ननु अभिधेयः प्रमेयत्वादित्यत्राव्याप्तिः साध्यस्याभिधेयत्वस्य केवलान्वयितया सर्वस्याभिधेयत्वेन साध्यवदन्याप्रसिद्धेः। किंच सत्तावाञ्जातेरित्यादौ साध्यवदन्यस्मिन्सामान्यादौ हेतुतावच्छेदक[1]समवायसंबन्धेन वृत्तित्वाप्रसिद्धेरव्याप्तिरित्यतो लक्षणान्तरमाह—**अथवेति**। हेतुर्विद्यते यस्मिन्स हेतुमान् हेत्वधिकरणं तन्निष्ठस्तद्वृत्तिर्यो विरहोऽत्यन्ताभावस्तदप्रतियोगिना साध्येन सह हेतोरैकाधिकरण्यं सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः। हेतुसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यसामानाधिकरण्यं व्याप्तिरिति भावः। तथाच न कुत्राप्यव्याप्तिः। धूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावस्य प्रतियोगिनो घटादयोऽप्रतियोगी च साध्यो वह्निस्तत्सामानाधिकरण्यं धूमस्येति। केवलान्वयिसाध्यकेऽपि प्रमेयत्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावो घटाद्यभावस्तदप्रतियोगिना साध्येनाभिधेयत्वेन सामानाधिकरण्यं प्रमेयत्वस्येति। एवं सत्तावाञ्जातेरित्यत्रापि जातिसमानाश्रयात्यन्ताभावाप्रतियोगिना साध्येन सत्तासामान्येन समानाधिकरणत्वं जातेरिति सर्वमनाविलम्। ननु वह्निमान्धूमादित्यत्राव्याप्तमिदं लक्षणं, पर्वतीयधूमाधिकरणनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वान्महानसीयवह्नेरिति चेन्न। समानाधिकरणयोर्व्याप्तेर्विवक्षणात्। ननु तथापि घटो द्रव्यं गुणकर्मान्य-

१ एवं व्याप्तिनिरुक्तौ च.

त्वविशिष्टसत्त्वादित्यत्राव्याप्तिः । विशिष्टसत्तायाः शुद्धसत्तायाश्चैक्येन शुद्धसत्ता समानाधिकरणोऽभावः गुणादिनिष्ठात्यन्ताभावस्तत्प्रतियोगित्वाद्द्रव्यत्वस्येति चेन्न । अधिकरणस्य हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेत्वधिकरणत्वस्याभिप्रेतत्वात् । अत्र हेतुतावच्छेदकं न शुद्धसत्त्वं किंतु विशिष्टसत्त्वम् । ततो गुणादेः शुद्धसत्ताधिकरणत्वेऽपि हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नविशिष्टसत्तारूपहेत्वधिकरणत्वाभावान्न दोषः । ननु तथापि वह्निमान्धूमादित्यत्रैवाव्याप्तिः समवायेन धूमाधिकरणधूमावयवनिष्ठोऽत्यन्ताभावप्रतियोगित्वाद्वह्नेरिति चेन्न । हेतुतावच्छेदकसंबन्धेन हेत्वधिकरणत्वस्य विवक्षणात् संयोगेन धूमवन्निष्ठाभावाप्रतियोगित्वाद्वह्नेर्न कोऽपि दोषः । ननु तथापि कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यत्राव्याप्तिः एतद्वृक्षत्वसमानाधिकरणो मूलावच्छेदेन कपिसंयोगात्यन्ताभावस्तत्प्रतियोगित्वात्कपिसंयोगस्येति चेन्न । अत्यन्ताभावस्य प्रतियोगिव्यधिकरणत्वाङ्गीकारात् । अत्र तु संयोगसमानाधिकरण एव संयोगात्यन्ताभाव इति न दोषः । ननु तथापि वह्निसाध्यकेऽव्याप्तिः धूमाधिकरणे पर्वतादौ समवायेन यो वह्न्यभावस्तत्प्रतियोगित्वाद्वह्नेरिति चेन्न । साध्यतावच्छेदकसंबन्धेन प्रतियोगिव्यधिकरणत्वस्वीकारात् । तथाच धूमाश्रये संयोगेन वह्निसत्त्वात्समवायेन वह्न्यभावस्योक्तसंबन्धेन प्रतियोगिव्यधिकरणत्वाभावान्नाव्याप्तिः । ननु तथापि गुणवान्द्रव्यत्वादित्यत्राव्याप्तिः । द्रव्यत्वाधिकरणनीलघटादिवृत्तिपीतरूपाद्यभावप्रतियोगित्वाद्गुणस्येति चेन्न । तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यसामानाधिकरण्यस्य व्याप्तित्वपरिग्रहात् । पीतरूपाभावस्य न गुणत्वं प्रतियोगितावच्छेदकमपि तु पीतत्वमिति नाव्याप्तिः । अयं निर्गलितार्थः—हेतुतावच्छेदकसंबन्धेन हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणवृत्तिर्यः साध्यतावच्छेदकसंबन्धेन प्रतियोगिव्यधिकरणात्यन्ताभावस्तत्प्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यसामानाधिकरण्यं व्याप्तिरिति । हेतुतावच्छेदकीभूतधूमत्वावच्छिन्नस्य हेतुतावच्छेदकीभूतसंयोगसंबन्धेनाधिकरणं महानसादितद्वृत्तिर्यः साध्यतावच्छेदकसंयोगसंबन्धेन प्रतियोगिव्यधिकरणः पटाद्यभावस्तत्प्रतियोगितानवच्छेदकं साध्यतावच्छेदकं वह्नित्वं तदवच्छिन्नः यः साध्यो वह्निस्तत्सामानाधिकरण्यं धूमव्याप्यास्येति ॥ ४ ॥

**सिषाधयिषया शून्या सिद्धिर्यत्र न तिष्ठति ॥**
**स पक्षस्तत्र वृत्तित्वज्ञानादनुमितिर्भवेत् ॥ ५ ॥**

ननु व्याप्यस्य पक्षवृत्तित्वज्ञानं परामर्श इत्युक्तं तत्र पक्षः कः । यत्र तादृशव्याप्या-

श्रयस्य वृत्तित्वं ज्ञायेतेत्याकाङ्क्षायां पक्षं लक्षयति-**सिषाधयिषयेति** । साधयितुमनुमातुमिच्छा सिषाधयिषा तया शून्या तदभावविशिष्टा सिद्धिः साध्यज्ञानं यत्र न तिष्ठति स पक्षस्तत्र पक्षे हेतोर्वृत्तित्वज्ञानादनुमितिर्भवेत् । अयं भावः—सिषाधयिषाविरहसहकृतसिद्ध्यभावः पक्षता, तदाश्रयः पक्षः । सिद्धिसत्त्वेऽनुमित्यदर्शनात्सिद्ध्यभाव इत्युक्तम् । क्वचित्सिद्धिसत्त्वेऽपि सिषाधयिषयानुमितिदर्शनात्सिसाधयिषाविरहसहकृतेति सिद्धिविशेषणम् । अत्र सिषाधयिषाभावो विशेषणं सिद्धिस्तु विशेष्यं विशिष्टाभावश्च पक्षता। तत्र विशिष्टाभावस्त्रिधा। क्वचिद्विशेषणाभावात् यथा देवदत्तसत्त्वेपि दण्डाभावेन दण्ड्यभावः । क्वचिद्विशेष्याभावात्, यथा दण्डसत्त्वेपि देवदत्ताभावेन दण्ड्यभावः । क्वचिदुभयाभावाद्यथा देवदत्तदण्डयोरभावेन दण्ड्यभावः । एवं यत्र सिषाधयिषास्ति सिद्धिरप्यस्ति तत्र सिषाधयिषाभावरूपविशेषणाभावप्रयुक्तविशिष्टाभावसत्त्वात्पक्षता । यत्र सिषाधयिषा नास्ति सिद्धिरपि नास्ति तत्र विशेष्याभावप्रयुक्तविशिष्टाभावात्पक्षता । यत्र सिषाधयिषास्ति सिद्धिश्च नास्ति तत्रोभयाभावप्रयुक्तविशिष्टाभावात्पक्षता । यत्र सिषाधयिषा नास्ति सिद्धिरस्ति तत्र न पक्षता । तत्रोभयसत्त्वेन विशिष्टाभावाभावात् । नच सिषाधयिषामात्रं पक्षता तां विनापि गर्जितादिना जलदानुमानात् । नापि सिद्ध्यभावमात्रं सिद्धावपि सिषाधयिषयानुमितिदर्शनात्सिद्धेः प्रतिबन्धकत्वात्सिषाधयिषायाश्चोत्तेजकत्वात्[१] । नापि संदिग्धसाध्यवत्त्वं पक्षता, विनापि संदेहं स्तनितादिना स्तन॰यित्न्वनुमितिदर्शनादतो विशिष्टाभाव एव पक्षता । एतादृशपक्षताश्रये व्याप्यस्य वृत्तित्वज्ञानात्स्वार्थानुमितिर्जायते । परार्थानुमितिस्तु पञ्चावयववाक्यप्रयोगजन्या । पंचावयवास्तु प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि ।

"प्रतिज्ञा साध्यवत्त्वेन पक्षस्य वचनं मता ।
पञ्चम्यन्तं वचो हेतुः स्याल्लिंगप्रतिपादकम् ॥ १ ॥
व्याप्तेर्निरूपकं वाक्यमुदाहरणमिष्यते ॥
पक्षे हेतूपसंहारो भवेदुपनयस्तथा ॥ २ ॥
पक्षे साध्योपसंहारो भवेन्निगमनं तथा ॥"

पर्वतो वह्निमानिति प्रतिज्ञा, धूमवत्त्वादिति हेतुः । यो यो धूमवान् स स वह्निमान् यथा महानसमित्युदाहरणम् । तथाचायमित्युपनयः । तस्मात्तथेतिनिगमनम् । व्याप्तिश्चान्वयरूपा व्यतिरेकरूपा तद्भेदेन च हेतोरन्वयित्वं व्यतिरेकित्वमन्वयव्यतिरेकित्वमिति त्रैविध्यम् । तत्सर्वं स्वयमग्रे निरूपयिष्यति ।

---

१ प्रतिबन्धकविघटकत्वमुत्तेजकत्वम् ।

**अनैकान्तो विरुद्धश्चाप्यसिद्धः प्रतिपक्षितः ।**
**कालात्ययापदिष्टश्च हेत्वाभासाश्च पञ्चधा ॥ ६ ॥**

प्रसङ्गाद्धेत्वाभासान्निरूपयति—अनैकान्त इति । अनुमितितत्करणान्यतरप्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयत्वं हेत्वाभासत्वम् । ते च पञ्च । तत्रानैकान्तः सव्यभिचारः, प्रतिपक्षितः प्रतिपक्षो जातोऽस्येति प्रतिपक्षितः सत्प्रतिपक्ष इत्यर्थः । कालात्ययापदिष्टो बाधितः ॥ ६ ॥

**आद्यः साधारणस्तु स्यादसाधारणकोऽपरः ॥**
**तथैवानुपसंहारी त्रिधाऽनैकान्तिको भवेत् ॥ ७ ॥**

तत्रानैकान्तिकं विभजते—आद्य इति ॥ ७ ॥

**यः सपक्षे विपक्षे च भवेत्साधारणस्तु सः ॥**

साधारणानैकान्तिकं दर्शयति—य इति । यो हेतुः सपक्षे निश्चितसाध्यवति विपक्षे निश्चितसाध्याभाववति च भवेत् वर्तते स हेतुः साधारणो मतः । विपक्षवृत्तित्वं विरुद्धेऽप्यस्तीति तद्वारणाय सपक्षेति । यथा पर्वतोऽग्निमान्द्रव्यत्वादिति । द्रव्यत्वं हि वह्निमति महानसादौ तदत्यन्ताभाववति च ह्रदेऽपि वर्तत इत्यस्य साधारणानैकान्तिकत्वम् । अनेन व्याप्तिज्ञानं प्रतिबध्यते ।

**यस्तूभयस्माद्व्यावृत्तः स त्वसाधारणो मतः ॥ ८ ॥**

द्वितीयानैकान्तिकमाह—यस्त्विति । यो हेतुरुभयस्मात्सपक्षाद्विपक्षाच्च व्यावृत्तः उभयत्रापि न वर्तते सोऽसाधारणो मतः । यथा शब्दो नित्यः शब्दत्वादित्यत्र नित्यत्वं येषु निश्चितमाकाशादिषु ते सपक्षाः । येषु नित्यत्वाभावो निश्चितो घटादिषु ते विपक्षा उभयत्रापि शब्दत्वं हेतुर्न विद्यते तस्य शब्दमात्रवृत्तित्वादित्यस्यासाधारणानैकान्तिकत्वं, फलमस्य सामानाधिकरण्यप्रतिबन्धः ॥ ८ ॥

**तथैवानुपसंहारी केवलान्वयिपक्षकः ॥**

तृतीयानैकान्तिकमाह—तथैवेति । केवलान्वयी अत्यन्ताभावाप्रतियोगी पक्षः पक्षता यस्य स हेतुरनुपसंहारी यथा सर्वमनित्यं प्रमेयत्वादित्यत्र सर्वस्य पक्षत्वात्सामानाधिकरण्यग्रहस्थलान्तराभावाद्व्याप्तिसंशयाधायकतयानुपसंहारित्वं दोषः ।

**यः साध्यवति नैवास्ति स विरुद्ध उदाहृतः ॥ ९ ॥**

एवं त्रिविधमनैकान्तं निरूप्य द्वितीयहेत्वाभासमाह—य इति । यो हेतुः

साध्यवति सपक्षे नैवास्ति स विरुद्धः। अत्रैवकारेण सपक्षमात्रावृत्तित्वमुच्यते। तेन साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वं विरुद्धत्वम्। यथा घटो नित्यः कृतकत्वादित्यत्र कृतकत्वं हेतुर्नित्येष्वाकाशादिषु क्वापि न वर्तते प्रत्युत यत्र कृतकत्वं तत्रानित्यत्वमिति साध्याभावव्याप्ततयास्य विरुद्धत्वम् ॥ ९ ॥

**आश्रयासिद्धिराद्या स्यात्स्वरूपासिद्धिरप्युत ॥**
**व्याप्यत्वासिद्धिरपरा स्यादसिद्धिरतस्त्रिधा ॥ १० ॥**

तृतीयं हेत्वाभासं निरूपयितुमादौ तद्घटकामसिद्धिं विभजते—**आश्रयासिद्धिरिति** ॥ १० ॥

**पक्षासिद्धिर्यत्र पक्षो भवेन्मणिमयो गिरिः ॥**

आश्रयासिद्धिं दर्शयति—**पक्षासिद्धिरिति** । यत्र मणिमयो गिरिः पक्षो भवेत्तत्र **पक्षासिद्धिः** हेतोराश्रयस्य पक्षस्यासिद्धिः पक्षासिद्धिः। आश्रयासिद्धिरित्यर्थः। मणिमयो गिरिरग्निमान्धूमादित्यत्र गिरिर्न मणिमय इति ज्ञाते सति तत्र परामर्शः प्रतिबध्यते। यथा वा गगनारविन्दं सुरभि अरविन्दत्वादित्यत्रारविन्दे पक्षे गगनीयत्वं नास्ति। पक्षे पक्षतावच्छेदकाभाव आश्रयासिद्धिरित्यर्थः।

**ह्रदो द्रव्यं धूमवत्त्वादत्रासिद्धिरथापरा ॥ ११ ॥**

द्वितीयामसिद्धिमाह—**ह्रद इति**। अपरासिद्धिः स्वरूपासिद्धिरित्यर्थः। ह्रदे पक्षे धूमवत्त्वलक्षणहेतुस्वरूपमेव नास्ति। यथा वा। शब्दो गुणश्चाक्षुषत्वादित्यत्र चाक्षुषत्वं शब्दे नास्त्येव तस्य श्रावणत्वात्। पक्षे व्याप्यत्वाभिमताभावः स्वरूपसिद्धिरित्यर्थः। अनेनापि परामर्शप्रतिबन्धः ॥ ११ ॥

**व्याप्यत्वासिद्धिरपरा नीलधूमादिके भवेत् ॥**

तृतीयामसिद्धिमाह—**व्याप्यत्वेति**। अपरा तृतीया पर्वतोऽग्निमान्नीलधूमादित्यत्र। यद्यपि धूमे नीलत्वं वर्तते तथापि नीलधूमत्वं न व्याप्यतावच्छेदकं गौरवात्किंतु धूमत्वमेव। तथाच धूमस्याग्निव्याप्यत्वेऽपि नीलधूमस्य तथात्वाभावाद्व्याप्यत्वासिद्धिः। आदिपदात् काञ्चनधूमादिकं गृह्यते। अत्र धूमे काञ्चनमयत्वं नास्त्येवेति तद्विशिष्टधूमस्याव्याप्यत्वाद्व्याप्यत्वासिद्धिः। इयमेव साधनाप्रसिद्धिपदेनोच्यते। साधने साधनतावच्छेदकाभावः साधनाप्रसिद्धिः। एवं साध्ये साध्यतावच्छेदकाभावः साध्याप्रसिद्धिः। साप्यत्रैवान्तर्भाव्या। यथा पर्वतः काञ्चनमयवह्निमान्धूमादित्यत्र साध्ये वह्नौ काञ्चनमयत्वाभावः। एवं सोपाधि-

कोऽपि व्याप्यत्वासिद्ध एव । यथा पर्वतो धूमवान्वह्नेरित्यत्रार्द्रेन्धनसंयोगवत्त्वमादायाग्नेर्धूमव्याप्यता गृह्यते । उपाधिलक्षणं च स्वयमग्रे निरूपयिष्यति ॥

**विरुद्धयोः परामर्शो हेत्वोः सत्प्रतिपक्षता ॥ १२ ॥**

चतुर्थं हेत्वाभासमाह—**विरुद्धयोरिति** । यत्र विरुद्धयोः परस्परसाध्याभावसाधकयोर्हेत्वोः परामर्शो जायते स हेतुः प्रतिपक्षितः प्रतिपक्षो जातोऽस्येति प्रतिपक्षितः । सत्प्रतिपक्ष इत्यर्थः । पाठान्तरे सन्विद्यमानः प्रतिपक्षो यस्य तस्य भावस्तत्तेत्यर्थः । यथा गन्धो नित्यो घ्राणविषयत्वाद्गन्धत्ववदिति गन्धोऽनित्यो जन्यत्वाद्घटवदिति च । अत्र घ्राणविषयत्वेन नित्यत्वं साध्यते । तदभावश्च जन्यत्वेनेति घ्राणविषयत्वं हेतुः प्रतिपक्षितः । अत्र परस्पराभावव्याप्यवत्ताज्ञानात्परस्परानुमितिः प्रतिबध्यते । अत्र विरुद्धयोरित्युक्त्या यत्र साध्यतदभावयोः सामानाधिकरण्यं न विरुध्यते न तत्र प्रतिपक्षितत्वमिति सूच्यते । तेन कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्कपिसंयोगाभाववानेतद्वृक्षत्वादित्यत्र न सत्प्रतिपक्षता । संयोगस्याव्याप्यवृत्तितया शाखावच्छेदेन संयोगवत्यपि मूलावच्छेदेन तदभावसाधने विरोधाभावात् ॥ १२ ॥

**साध्यशून्यो यत्र पक्षस्त्वसौ बाध उदाहृतः ॥**
**उत्पत्तिकालीनघटे गन्धादिर्यत्र साध्यते ॥ १३ ॥**

**इत्यनुमानम् ॥**

पञ्चमहेत्वाभासमाह—**साध्यशून्य इति** । यत्र पक्षः साध्यशून्यः साध्यात्यन्ताभाववान् प्रमाणान्तरेण निश्चितोऽसौ बाधस्तद्वान्हेतुर्बाधित इत्युच्यते । यथोत्पत्तिकालीनो घटो गन्धवान्पृथिवीत्वादित्यत्र घटे गन्धसत्त्वेऽप्युत्पत्तिकालावच्छेदेन तत्र तदभावो निश्चितः । प्रथमक्षणे द्रव्यस्य निर्गुणत्वस्वीकारात्समवायिकारणं विना कार्योत्पत्त्यसंभवात् । कारणस्य कार्यपूर्ववर्तित्व नियमात् । तथाच द्रव्यं प्रथमक्षणे स्वयमुत्पद्य क्षणान्तरे स्वगुणं जनयतीत्यभ्युपगन्तव्यम् । ततश्च प्रथमक्षणावच्छेदेन घटे गन्धवत्त्वसाधने बाधः । एवं वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वादित्यत्र स्पार्शनप्रत्यक्षेण वह्नावुष्णत्वनिश्चयाद्बाधः । एवं मूलावच्छेदेन संयोगाभाववति वृक्षे मूलावच्छेदेनैव संयोगसाधने बाधः । अत्र बाधितसत्प्रतिपक्षयोः साक्षादनुमितिप्रतिबन्धकत्वमितरेषां तु तत्करणपरामर्शादिप्रतिबन्धद्वारा परंपरयानु-

मितिप्रतिबंधकत्वमतोऽनुमितितत्करणान्यतरप्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयत्वं हेत्वाभासत्वमिति निष्कर्षः सिद्धः ॥ १३ ॥ इत्यनुमानम् ॥

**ग्रामीणस्य प्रथमतः पश्यतो गवयादिकम् ॥**
**सादृश्यधीर्गवादीनां या स्यात्सा करणं मतम् ॥ १ ॥**
**वाक्यार्थस्यातिदेशस्य स्मृतिर्व्यापार उच्यते ॥**
**गवयादिपदानां तु शक्तिधीरुपमा फलम् ॥ २ ॥**

**इत्युपमनम् ॥**

उपमितिं दर्शयति—**ग्रामीणस्येति**। यत्र ग्राम्यजनः स्वयं गवयपदवाच्यमजानानो गोसदृशो गवय इति कुतश्चिच्छ्रुत्वा कदाचिद्वनं गतो गोसदृशं पिंडं दृष्ट्वातिदेशवाक्यार्थं स्मृत्वा तत्र गवये गवयपदवाच्यत्वं गृह्णाति तत्र गवये गवयपदवाच्यत्वज्ञानमुपमितिस्तत्र करणं व्यापारं चाह ग्रामीणस्येति। ग्रामीणपदेनारण्यकपशौ स्वतः शक्तिज्ञानराहित्यं ध्वन्यते। प्रथमत इति सकृदुपमित्या गवयमात्रे सामान्यलक्षणसन्निकर्षेण गवयपदवाच्यत्वज्ञाने जाते पुनर्गवयान्तरं दृष्ट्वा उपमितिर्न कल्प्येत्यर्थः। गवयादिकं पश्यत इति सादृश्यज्ञाने उद्बोधकसमवधानमुक्तम्। गवादीनां **सादृश्यधीः** अयं पिंडो गोसदृश इति ज्ञानं **करण**मुपमितावसाधारणं कारणं अतिदेशवाक्यार्थस्मरणं द्वारीकृत्योपमितिहेतुत्वात् **अतिदेशस्य** गोसदृशो गवय इति सादृश्यबोधकवाक्यार्थस्य **स्मृतिः** सादृश्यज्ञानतो जाता तज्जन्योपमितिजनिकेति **व्यापार उच्यते** गवयादिपदानां **शक्तिधी**र्गवयादिपिंडेषु वाचकत्वसंकेतज्ञान**मुपमा** उपमितिः फलम् ॥ १ ॥ २ ॥ इत्युपमानम् ॥

**पदज्ञानं तु करणं द्वारं तत्र पदार्थधीः ॥**
**शाब्दबोधः फलं तत्र शक्तिधीः सहकारिणी ॥ १ ॥**

अथ शाब्दीमनुभूतिमाह—**पदज्ञानमिति**। गामानयेत्यादि वाक्यं श्रुतवतः पदज्ञानानंतरं शक्तिलक्षणान्यतरसंबंधेन पदार्थस्मरणे सति गोकर्मकानयनेऽहं नियुक्त इत्यादिज्ञानमुत्पद्यते स शाब्दबोधः। तत्र करणादि दर्शयति—**पदज्ञानमिति**। ज्ञायमानपदस्य करणत्वे मौनिश्लोकादौ शाब्दबोधाभावप्रसंग इति पदज्ञानमुपात्तं **तत्र** शाब्दबोधे **पदार्थधीः** पदार्थस्मरणं **द्वारं** व्यापारः तदपि पदजन्यमपेक्षितमन्यथा चक्षुरादिना पदार्थज्ञानेऽपि शाब्दत्वापत्तिः। **शाब्दबोधः** शब्दजन्यानुभूतिः **फलं**

तत्र पदार्थबोधजनने **शक्तिधीः सहकारिणी** उपयोगिनी शक्तिज्ञानं विना पदज्ञानेऽपि पदार्थस्मरणाभावात् । शक्तिश्चास्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरेच्छारूपः संकेतः । अत्र लक्षणाप्युपलक्षणीया । तथाच शक्तिलक्षणान्यतरसंबन्धेन पदजन्यपदार्थस्मरणं व्यापार इत्यर्थः । शक्तिज्ञानं तु व्याकरणादितो भवति । तथाहि—

व्याकरणादुपमानात्कोशाद्व्यवहारतश्चापि ॥
वचसः शेषाद्विवृतेराप्तगिरा गृह्यते शक्तिः ॥ १ ॥

व्याकरणाद्यथा प्रकृतिप्रत्ययादीनाम्, उपमानाद्यथा गवये गवयपदवाच्यत्वज्ञानं, कोशाद्यथा नीलादिपदानां गुणे गुणिनि च, व्यवहारतो यथा घटमानयेत्यादि-चैत्रवचःप्रेरितमैत्रकृतघटानयनादिरूपव्यवहाराद्बालस्य व्युत्पित्सोर्घटपदस्य घटे, वाक्यशेषाद्यथा यवमयश्चरुर्भवतीत्यत्र यवपदस्य 'वसन्ते सर्वसस्यानां जायते पत्रशातनम् । मोदमानाश्च तिष्ठन्ति यवाः कणिशशालिनः' इति वाक्यशेषाद्दीर्घशूकविशेषे, विवरणाद्यथा तुरंगोस्तीत्यत्राश्वोऽस्तीति पर्यायेण तदर्थकथने तुरंगपदस्याश्वे, आप्तगिरा यथा कोकिलः पिक उच्यत इति पिकपदस्य कोकिले, क्वचित्प्रसिद्धपदसान्निध्यादपि शक्तिग्रहो भवति यथा मधुकरः कुरुते रुतमंबुज इत्यत्र मधुकरस्य भ्रमरे इत्यलम् ॥ १ ॥

## लक्षणा शक्यसंबंधस्तात्पर्यानुपपत्तितः ॥

अथ लक्षणां लक्षयति—लक्षणेति । शक्यस्य शक्तिगम्यस्य मुख्यार्थस्य हानेनाहानेनैकदेशहानेन वा स्वसंबंधिनि संबंधो लक्षणावृत्तिः। यथा गंगायां घोष इत्यत्र गंगापदस्य प्रवाहरूपमुख्यार्थहानेन तत्संबंधिनि तीरे वृत्तिर्जहतीलक्षणा । यथाच काकेभ्यो दधि रक्ष्यतां छत्रिणो यांतीत्यादौ काकपदस्य दध्युपघातके छत्रिपदस्य तदेकसार्थवाहिनि स्वार्थाहानेन वृत्तिरजहतीलक्षणा । यथाच सेयं गौरित्यत्र विरुद्धतदेतद्देशकालावस्थादिहानेनाविरुद्धगोपिण्डमात्रे जहदजहल्लक्षणा। एवं लक्ष्यमाणगुणसंबन्धरूपा **गौण्यपि** लक्षणैव यथाग्निर्माणवकः सिंहो देवदत्त इत्यादावग्निरिव तेजस्वी सिंह इव क्रूरो माणवक इत्यर्थः। वाच्यार्थस्यैव परम्परासंबन्धो **लक्षितलक्षणा** यथा भाति पद्मे द्विरेफ इत्यत्र रेफद्वयसंबन्धो भ्रमरपदे बोध्यते तेन च मधुकरो ज्ञायते इति । अन्वयानुपपत्तिं लक्षणाबीजं केचिदूचिरे तन्मतमपाकुर्व-

---

१ किं विवरणं? समानार्थकपदान्तरेण तदर्थकथनम् ।

माह–तात्पर्येति। तात्पर्यानुपपत्तिरेव लक्षणाबीजं नान्वयानुपपत्तिस्तथात्वे यष्टीः प्रवेशयेत्यत्र लक्षणाभावप्रसंगः। यष्टिष्वपि प्रवेशान्वयोपपत्तेः। किंच यद्यन्वयानुपपत्तिरेव बीजं तदा क्वचिद्गंगापदं तीरं क्वचिद्घोषपदं मत्स्यादिकं लक्षयतीति नियमो न स्यात् ॥ २ ॥

आसत्तिर्योग्यताकांक्षा तात्पर्यज्ञानमिष्यते ॥ २ ॥
कारणं

अथ शाब्दबोधे सहकारिकारणगणं गणयति—आसत्तीति। ज्ञानपदं प्रत्येकं योज्यम्। तथा चासत्तिज्ञानं योग्यताज्ञानमाकांक्षाज्ञानं तात्पर्यज्ञानमिति चतुष्टयं शाब्दे सहकारीत्यर्थः।

सन्निधानं तु पदस्यासत्तिरुच्यते ॥

यथोद्देशमासत्तिं लक्षयति—सन्निधानं त्विति। अन्वयप्रतियोगिना[1] पदेन सहान्वयानुयोगिनः पदस्य सन्निधानमव्यवधानेनोपस्थितिरासत्तिरुच्यते। अत्र व्यवहितेपि क्वचिदासत्तिभ्रमे[2] शाब्दबोधदर्शनादासत्तिज्ञानं तत्कारणं बोध्यम्। तद्रहितं वाक्यमप्रमाणम्। यामे यामे असहोच्चारितपदकं गामानयेत्यादिवाक्यं यथा।

पदार्थे तत्र तद्वत्ता योग्यता परिकीर्तिता ॥ ३ ॥

योग्यतां निर्वक्ति—पदार्थे इति। तत्र प्रकृते पदार्थे तद्वत्तापरपदार्थसंबन्धो योग्यता। यथा पयसा सिंचतीत्यत्र जलस्य सेके करणतया संबन्धः। अतएव वह्निना सिंचतीत्यत्र वह्नेः सेके करणत्वेनानुपयोगाद्योग्यताज्ञानाभावान्न शाब्दबोधः ॥ ३ ॥

यत्पदेन विना यस्य नानुभावकता भवेत् ॥
आकांक्षा

आकांक्षां दर्शयति—यत्पदेनेति। यत्पदेन येन पदेन विना यस्य पदस्याननुभावकता अन्वयाननुभावकत्वं भवेत्तेन पदेन सह तस्य पदस्याकांक्षा यथा घटमानयेत्यत्रानयेतिक्रियापदं विना घटमिति कारकपदं नान्वयमनुभावयतीति तस्य तदाकांक्षा। एवं घटशब्दः स्वोत्तरद्वितीयाविभक्तिं विना न कर्मतां बोधयतीति

---

१ यन्निष्ठोन्वयः सोन्वयप्रतियोगी यन्निरूपितोन्वयः सोन्वयानुयोगी।

२ गिरिर्भुक्तं वह्निमान्देवदत्तेन इत्यत्र वाक्ये शाब्दबोधदर्शनात्।

तस्य तदाकांक्षा । तदभावादेव गौरश्व इति घटः कर्मत्वमानयनं कृतिरित्यादौ च न शाब्दधीः ।

**वक्तुरिच्छा तु तात्पर्यं परिकीर्तितम् ॥ ४ ॥**

तात्पर्यं लक्षयति—**वक्तुरिति** । वक्तुरुच्चारयितुरिच्छाऽस्माद्वाक्यादयमर्थो बुध्यतामिति वांछा तात्पर्यम् । अत एव वेदे तात्पर्यज्ञानाय वक्तेश्वरः कल्प्यते । एवमाकाङ्क्षादिचतुष्कसहकृतवाक्याद्व्युत्पन्नस्य शाब्दबोधो भवतीति सिद्धम् । इत्यनुभूतिचतुष्टयनिरूपणम् ।

पूर्वमात्मनिरूपणप्रस्तावे अनुभूतिः स्मृतिश्च स्यादनुभूतिश्चतुर्विधेति बुद्धेर्द्वैविध्यं प्रतिज्ञायानुभूतिचतुष्टयं निरूपितं । स्मृतिस्तु सुगमतया न निरूपिता । संस्कारजन्यं ज्ञानं स्मृतिरिति तल्लक्षणं, संस्कारो भावनाख्यस्तज्जन्यं, तस्य ध्वंसेऽतिप्रसंगवारणाय ज्ञानमिति । प्रत्यक्षादिज्ञाने तद्वारणाय संस्कारजन्यमिति । अत्र पूर्वानुभवः संस्कारद्वारा कारणं, तत्रापि स्मरणोत्तरं पूर्वसंस्कारविनाशेपि तेनैव स्मरणेन संस्कारान्तराधानेन स्मरणांतरजननाद्ध्यानत्वेन कारणता न पूर्वानुभवत्वेनेति केचित् । परे तु कालस्य रोगस्य चरमस्मरणस्य च संस्कारनाशकत्वस्वीकारात्स्मरणांतरोपपत्तेरनुभवत्वेनैव कारणतेत्याहुः ।

**साक्षात्कारे सुखादीनां करणं मन उच्यते ॥**
**अयौगपद्याज्ज्ञानानां तस्याणुत्वमिहेष्यते ॥ ५ ॥**

एवमष्टमं द्रव्यं निरूप्यावशिष्टं नवमं द्रव्यं मनो निरूपयति—**साक्षात्कार इति** । निःस्पर्शं सक्रियं द्रव्यं मनः । वाय्वादावाकाशादौ चातिप्रसंगवारणाय विशेषणद्वयं, तत्र मानमाह—साक्षात्कार इति । सुखादीनां सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नज्ञानानां सुखादिमदात्मनश्च साक्षात्कारे करणं मन उच्यते । सुखादीनां जन्यज्ञानविषयत्वाज्जन्यज्ञानस्य च सकरणकत्वनियमाच्चक्षुरादीनां चांतरज्ञाने करणत्वासंभवात्करणभूतं मन एष्टव्यमित्यर्थः । मनस आकाशवन्निःस्पर्शद्रव्यतया विभुत्वं परे मेनिरे तन्मतमपनयन्नाह—**अयौगपद्यादिति** । ज्ञानानां चाक्षुषत्वाचघ्राणजादीनामयौगपद्यात्क्रमभावित्वात्तस्य मनसोऽणुत्वमिहेष्यते, मनसो विभुत्वे सर्वदा

---

१ एतेन मनसि प्रमाणं दर्शितं सुखसाक्षात्कारः सकरणकः जन्यसाक्षात्कारत्वात् चाक्षुषसाक्षात्कारादिवदित्यनुमानेन मनसः करणत्वसिद्धेः ।

सर्वेन्द्रियसंबंधसंभवाद्युगपदेव सर्वज्ञानानि जायेरन्। किंच विभ्वोः संयोगदर्शनान्मनसो विभुत्वे आत्ममनःसंयोगासंभवापत्त्या जन्यकार्यस्य च सासमवायिकत्वनियमेन ज्ञानमात्रं नोत्पद्येत। विभ्वोरपि संयोगाभ्युपगमे तयोर्निष्क्रियत्वेन संयोगस्य नित्यत्वापत्त्या मनसः पुरीतत्प्रवेशप्रयुक्तज्ञानाभावरूपसुषुप्त्यभावप्रसंग इति सक्रियमणुरूपं मनो ज्ञानाद्यसमवायिसंयोगाश्रयमभ्युपेयमित्यर्थः ॥५॥ इति द्रव्यनिरूपणम्।

**अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेया निर्गुणा निष्क्रिया गुणाः ॥**

अथ गुणान्निरूपयितुमुपक्रमते—**अथेति**। द्रव्यनिरूपणानंतर्यार्थोथशब्दः। गुणा रूपादयो द्रव्याश्रिता यथायोग्यं द्रव्याधिकरणका ज्ञेयाः। जन्यद्रव्याणामपि स्वसमवायिद्रव्याश्रितत्वं भवतीत्यत आह—निर्गुणा निष्क्रिया इति। गुणेषु गुणकर्मणी नांगीक्रियन्ते। एकं रूपं रसात्पृथगित्यादिव्यवहारस्तु स्वाश्रयसमवायसंबंधेन निर्वाह्यः।

**रूपं रसः स्पर्शगंधौ परत्वमपरत्वकम् ॥ ६ ॥**
**द्रवो गुरुत्वं स्नेहश्च वेगो मूर्तगुणा अमी ॥**

अथ शिष्यबुद्धिवैशद्याय गुणानामवांतरभेदमाचक्षाणस्तेषां मूर्तामूर्तगुणत्वेन त्रैविध्यमभिप्रेत्य मूर्तगुणांस्तावद्गणयति—**रूपमिति**। वेगेन स्थितिस्थापकोप्युपलक्षणीयः। रूपादय इमे मूर्तगुणाः। मूर्तेषु परिच्छिन्नपरिमाणवत्पृथिव्यादिषु यथोचितं वर्तंते नामूर्तेष्वित्यर्थः ॥ ६ ॥

**धर्माधर्मौ भावना च शब्दो बुद्ध्यादयोपि च ॥ ७ ॥**
**एतेऽमूर्तगुणाः सर्वे विद्वद्भिः परिकीर्तिताः ॥**

अथामूर्तगुणानाह—**धर्माधर्माविति**। शब्द आकाशवृत्तिः शेषा आत्मवृत्तयः। आदिपदेन सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्ना गृह्यन्ते। इमेऽमूर्तगुणा आत्माकाशयोर्विभुत्वात्। मूर्तेषु पृथिव्यादिषु न संतीम इत्यर्थः ॥ ७ ॥

**संख्यादयो विभागांता उभयेषां गुणा मताः ॥ ८ ॥**

मूर्तामूर्तगुणानाह—**संख्यादय इति**। संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागा इमे पंचोभयेषां मूर्तानाममूर्तानां च गुणाः मूर्तेष्वमूर्तेषु च वर्तंत इत्यर्थः ॥ ८ ॥

संयोगश्च विभागश्च संख्या द्वित्वादिका तथा ॥
द्विपृथक्त्वादयस्तद्वदेतेऽनेकाश्रिता गुणाः ॥ ९ ॥

अथैकनिष्ठद्विनिष्ठगुणत्वेन द्वैविध्यमभिप्रेत्य द्विष्ठगुणान्गणयति–संयोग इति। इमौ संयुक्तौ विभक्तौ वा इमौ द्वाविमौ पृथगिति व्यवहारदर्शनादेषां द्विष्ठगुणत्वम्। आदिपदेन त्रित्वचतुष्ट्वादि त्रिपृथक्त्वादि च ग्राह्यं, तेषां च त्रिचतुरादिवृत्तित्वं बोध्यम् ॥ ९ ॥

अतः शेषगुणाः सर्वे मता एकैकवृत्तयः ॥

एकनिष्ठगुणानाह–अत इति। शेषगुणा रूपादय एकत्वसंख्या एकपृथक्त्वं च एकैकवृत्तय एकैकस्मिन्वर्तत इत्यर्थः ॥–

बुद्ध्यादिषट्कं स्पर्शान्ताः स्नेहः सांसिद्धिको द्रवः ॥१०॥
अदृष्टभावनाशब्दा अमी वैशेषिका गुणाः ॥

अथ सामान्यगुणविशेषगुणभावेन द्वैविध्यमंगीकृत्य विशेषगुणानाह–बुद्ध्यादीति। बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाः रूपरसगंधस्पर्शाः स्नेहः सांसिद्धिकद्रवत्वं धर्माधर्मौ भावनाख्यसंस्कारः शब्दश्चामी भूतानामात्मनश्च गुणाः वैशेषिकाः विशेषगुणा इत्यर्थः। स्वार्थे ठक् प्रत्ययः ॥ १० ॥

संख्यादिरपरत्वांतो द्रवोऽसांसिद्धिकस्तथा ॥ ११ ॥
गुरुत्ववेगौ सामान्यगुणा एते प्रकीर्तिताः ॥

सामान्यगुणानाह–संख्यादिरिति। संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वानि नैमित्तिकद्रवत्वं गुरुत्वं वेगः स्थितिस्थापकश्च सामान्यगुणाः ॥ ११ ॥

संख्यादिरपरत्वान्तो द्रवत्वं स्नेह एव च ॥ १२ ॥
एते तु द्वीन्द्रियग्राह्याः

अथ बाह्यैकेंद्रियग्राह्यत्वेन बाह्यद्वींद्रियग्राह्यत्वेन चातींद्रियत्वेन च त्रैविध्यमाह–संख्यादिरिति। संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वद्रवत्वस्नेहानां चक्षुस्त्वग्भ्यां ग्रहणाद्बाह्यद्वीन्द्रियग्राह्यत्वमित्यर्थः ॥ १२ ॥

अथ स्पर्शान्तशब्दकाः ॥

**बाह्यैकैकेन्द्रियग्राह्याः**

रूपरसगंधस्पर्शशब्दानां च क्रमेण चक्षूरसनघ्राणत्वक्श्रोत्रैर्ग्रहणाद्बाह्यैकैकेन्द्रियग्राह्यता ॥–

**गुरुत्वादृष्टभावनाः ॥ १३ ॥**

**अतीन्द्रियाः**

गुरुत्वधर्माधर्मभावनाख्यसंस्काराणामनुमानगम्यतयातीन्द्रियत्वम्। नहि चक्षुषा त्वचा वा द्रव्ये प्रत्यक्षीकृते तद्गतगुरुत्वं प्रत्यक्षीभवति किंतु तुलया करेण वा तोलनाद्युपायेन। एवं सुखदुःखस्मृतीनामुद्भवे तद्धेतुधर्माधर्मसंस्काराणामनुमानम्। सुखादीनां चांतरिंद्रियैकमनोग्राह्यत्वादत्रापरिगणनम् ॥ १३ ॥

**विभूनां तु ये स्युर्वैशेषिका गुणाः ॥**
**अकारणगुणोत्पन्ना एते तु परिकीर्तिताः ॥ १४ ॥**

अथ कारणगुणजन्यत्वेनाकारणगुणजन्यत्वेन च द्वैविध्यमाह–**विभूनामिति**। विभूनां ये विशेषगुणा बुध्यादयो नव शब्दश्च एते अकारणगुणोत्पन्नाः। एते ह्यात्मन आकाशाच्च जायन्ते। नच तयोर्नित्ययोः कारणं वर्तते यस्य गुणा एनयोर्गुणान्तरमारभेरन्नित्यकारणगुणपूर्वकत्वमेषामित्यर्थः ॥ १४ ॥

**अपाकजास्तु स्पर्शान्ता द्रवत्वं च तथाविधम् ॥**
**स्नेहवेगगुरुत्वैकपृथक्त्वपरिमाणकम् ॥ १५ ॥**
**स्थितिस्थापक इत्येते स्युः कारणगुणोद्भवाः ॥**

कारणगुणपूर्वकानाह–**अपाकजा इति**। अत्रापाकजा इति विशेषणेन पाकजानां रूपरसगंधस्पर्शद्रवत्वानामग्निसंयोगान्नूतनमुत्पद्यमानानामकारणगुणजन्यत्वं विवक्षितमिति बोध्यम्। **अपाकजाः** स्वाभाविकाः। **स्पर्शान्ताः** रूपरसगन्धस्पर्शाः। **तथाविधमपाकजमेव द्रवत्वं** स्नेहवेगगुरुत्वैकपृथक्त्वपरिमाणस्थितिस्थापकाख्यसंस्काराः। एते सर्वे **कारणगुणोद्भवाः** कारणगुणपूर्वका इत्यर्थः ॥१५॥

**संयोगश्च विभागश्च वेगश्चैते तु कर्मजाः ॥ १६ ॥**

अथ कर्मासमवायिकान्गुणानाह–**संयोगश्चेति**। श्येनवृकादिसंयोगविभागयोः शरादिगतवेगस्य च कर्मजन्यत्वं प्रसिद्धमिति भावः ॥ १६ ॥

**स्पर्शान्तपरिमाणैकपृथक्त्वस्नेहशब्दके ॥**
**भवेदसमवायित्वम्**

अथासमवायिगुणनिमित्तगुणोभयविधगुणेति त्रैविध्यमाह—**स्पर्शान्तेति** । एकपृथक्त्वेनैकत्वसंख्या स्थितिस्थापकसंस्कारश्च संग्राह्यौ । कारणगतरूपरसगंधस्पर्शैकत्वपरिमाणैकपृथक्त्वस्नेहेभ्यः कार्यगतरूपादयो जायंत इति तेषां तत्रासमवायित्वं प्रथमशब्दस्य च द्वितीयशब्देऽसमवायित्वम्—

**अथ वैशेषिके गुणे ॥ १७ ॥**
**आत्मनः स्यान्निमित्तत्वम्**

निमित्तगुणानाह—**अथेति** । आत्मनो वैशेषिके गुणे बुद्ध्यादिनवके निमित्तत्वं स्यादात्मनो गुणानां कुत्राप्यसमवायित्वं नास्ति, तेषां स्वोत्तरक्षणवर्तिगुणनाश्यत्वात्, निमित्तत्वं तु विद्यते, आदौ जानाति ततो वाञ्छति ततः कुरुत इति हेतुतादर्शनात् ॥ १७ ॥—

**उष्णस्पर्शगुरुत्वयोः ॥**
**वेगेऽपि च द्रवत्वे च संयोगादिद्वये तथा ॥ १८ ॥**
**द्विधैव कारणत्वं स्याद्**

उभयविधगुणानाह—**उष्णस्पर्शेति** । उष्णस्पर्शादिषण्णां द्विधाकारणत्वमसमवायित्वं निमित्तत्वं च स्यात् । तथाहि उष्णस्पर्शो ह्यभ्याद्यवयवगतोऽवयविगतोष्णस्पर्शे भवत्यसमवायी पाकजरूपादिस्थले तु तेजोगतोष्णस्पर्शो निमित्तं, तेजःसंयोगो हि तत्रासमवायी । एवं कारणनिष्ठगुरुत्ववेगद्रवत्वानां कार्यगतगुरुत्ववेगद्रवत्वजनने क्रमेण स्वाधिकरणनिष्ठपतनस्यंदनद्रवणजनने च भवत्यसमवायित्वं, गुरुत्ववेगयोरभिघाते निमित्तत्वं, द्रवत्वस्य च संग्रहे निमित्तत्वम् । एवं भेर्याकाशसंयोगो वंशदलाकाशविभागश्च शब्दोत्पत्तावसमवायी, भेरीदंडसंयोगो वंशदलद्वयविभागश्च निमित्तमिति ॥ १८ ॥—

**अथ प्रादेशिको भवेत् ॥**
**वैशेषिको विभुगुणः संयोगादिद्वयं तथा ॥ १९ ॥**

अथ व्याप्यवृत्तित्वाव्याप्यवृत्तित्वाभ्यां द्विविधतामाह—**अथेति** । बुद्ध्यादिनवकं शब्दश्च संयोगविभागौ च प्रादेशिकोऽव्याप्यवृत्तिः । तदितरविशेषगुणानां व्याप्य-

वृत्तित्वमर्थतो ज्ञेयम्। विभाव्यात्मनि शरीरावच्छेदेन ज्ञानादिकं जायते न सर्वत्र, एवमाकाशे शब्दोऽपि क्वाचित्को न सार्वत्रिकः। एवं शाखामूलावच्छेदेनैकस्मिन्वृक्षे संयोगतदभावौ स्तः। एवं विभागतदभावावपि द्रष्टव्यौ, रूपादयस्तु नैवं किंतु सर्वदेशावच्छेदेन स्वाश्रये वर्तन्त इत्यर्थः ॥ १९ ॥

**चक्षुर्ग्राह्यं भवेद्रूपं द्रव्यादेरुपलम्भकम् ॥**
**चक्षुषः सहकारि स्याच्छुक्लादिकमनेकधा ॥ २० ॥**

एवं गुणानामवान्तरविशेषं प्रपञ्च्य प्रत्येकं रूपादिगुणं क्रमान्निरूपयति—चक्षुर्ग्राह्यमिति। रूपं चक्षुर्ग्राह्यं भवेत्। यद्यपि चक्षुर्ग्राह्यत्वं घटादौ संख्यादौ रूपत्वादौ चातिव्याप्तं तथापि चक्षुर्ग्राह्यो विशेषगुणो रूपमिति बोध्यम्। द्रव्यादेरुपलंभकं साक्षात्कारसाधनं, तदेव दर्शयति—चक्षुष इति। चक्षुषा द्रव्यगुणकर्मसामान्यानां प्रत्यक्षजनने उद्भूतरूपं सहकारि स्यात्। गृह्णाति चक्षुःसंबंधादालोकोद्भूतरूपयोरितिप्रागुक्तेः, तच्च रूपं शुक्लादिकमनेकधा अनेकप्रकारं शुक्लपीतरक्तनीलहरितकपिशचित्रभेदात्सप्तविधमित्यर्थः। तच्च पृथिव्यां सप्तविधमप्स्वभास्वरं शुक्लं तेजसि भास्वरं शुक्लमिति प्राक् प्रपञ्चितं। किंच नीलपीताद्यवयवारब्धे अवयविनि परस्परप्रतिबन्धेन नीलपीताद्यनुत्पत्त्या नीरूपत्वे चाप्रत्यक्षत्वापत्त्या रूपवत्समवेतत्वस्य च प्रत्यक्षप्रयोजकत्वे गौरवापत्त्या एकं चित्रमित्यनुभवेन चावयवगतनानाजातीयरूपकदम्बेनावयविनि विजातीयं चित्रमेकं रूपमारभ्यत इत्यभ्युपेयम्। एवं चित्रस्पर्शोऽपि स्वीकार्यः। चित्ररसगंधौ तु नाङ्गीक्रियेते अवयवगतरसगंधाभ्यामेव रसगंधोपलम्भसंभवेऽवयविनो नीरसत्वे निर्गन्धत्वेऽपि वा क्षतेरभावादिति ॥२०॥

**जलादिपरमाणौ तन्नित्यमन्यत्सहेतुकम् ॥**

तद्विभजते—जलादीति। आदिपदेन तेजोग्रहणं, जलतेजसोः परमाणौ तद्रूपं नित्यमजन्यम्। अन्यत् जलतेजःपरमाणुरूपातिरिक्तं पृथिवीपरमाणुगतं सावयवपृथिवीजलतेजोगतं च सहेतुकं जन्यं, पृथिवीपरमाणावपि पाकेन रूपान्तरोत्पत्त्यभ्युपगमात्। अवयविगतरूपं त्ववयवगतरूपाज्जायते एव ॥—

**रसस्तु रसनाग्राह्यो मधुरादिरनेकधा ॥ २१ ॥**
**सहकारी रसज्ञाया नित्यतादि च पूर्ववत् ॥**

रसं निरूपयति—रस इति। रसनाग्राह्यत्वं रसत्वेऽपीति तद्व्यावृत्तये गुणपदं देयम्। रसनाग्राह्यो गुणो रस इत्यर्थः। मधुरादिः आदिपदेनाम्ललवणकटुकषायति-

क्तग्रहणम् । अनेकधा षड्विधः । पृथिव्यां षोढा, जले मधुर एवेत्युक्तं प्राक् । रसज्ञाया रसनाया रासनप्रत्यक्षजनने विषयतासंबन्धेन रसः सहकारी कारणमित्यर्थः । नित्यतादि नित्यताऽनित्यता च, पूर्ववत् जलपरमाणौ नित्यः तद्भिन्ने जलपृथिवीगतश्चानित्य इत्यर्थः ॥ २१ ॥—

**घ्राणग्राह्यो भवेद्गन्धो घ्राणस्यैवोपकारकः ॥ २२ ॥**
**सौरभश्चासौरभश्च स द्वेधा परिकीर्तितः ॥**

गन्धमाह—**घ्राणग्राह्य** इति । घ्राणग्राह्यो गुणो गन्ध इत्यर्थः । गन्धत्वेतिप्रसंगवारणाय गुण इति । घ्राणस्यैव घ्राणजप्रत्यक्षे उपकारकः सहकारिकारणमित्यर्थः । सौरभः सुरभिः । असौरभः असुरभिः । द्विविधोऽपि पृथिव्यामेव वर्तते जन्यश्चेति बोध्यम् ॥ २२ ॥

**स्पर्शस्त्वगिन्द्रियग्राह्यस्त्वचः स्यादुपकारकः ॥ २३ ॥**
**अनुष्णाशीतशीतोष्णभेदात्स त्रिविधो मतः ॥**

स्पर्शं निरूपयति—**स्पर्शस्त्वि**ति । त्वगिन्द्रियग्राह्यो गुणः स्पर्शः, स च त्वचः स्पार्शनप्रत्यक्षजनने उपकारकः सहकारी । तं विभजते—**अनुष्णे**ति । अनुष्णाशीतः पृथिवीवाय्वोः, शीतो जले, उष्णस्तेजसीति विवृतं प्राक् ॥ २३ ॥

**काठिन्यादि क्षितावेव नित्यतादि च पूर्ववत् ॥ २४ ॥**

कठिनकोमलतादिस्पर्शविशेषस्याधिकरणमाह—**काठिन्यादी**ति । कठिनसुकुमारौ पृथिव्यामेव स्पर्शौ नान्यत्रेत्यर्थः । नित्यतादि नित्यत्वमनित्यत्वं च पूर्ववत्, जलतेजोवायुपरमाणुगताः स्पर्शाः नित्यास्तद्भिन्ना जलतेजोवायुभूमिभूमिपरमाणुगतास्त्वनित्या इत्यर्थः ॥ २४ ॥

**एतेषां पाकजत्वं तु क्षितौ नान्यत्र कुत्रचित् ॥**

एवं निरूपितरूपादिगुणचतुष्टयस्य पाकजत्वापाकजत्वाभ्यां द्वैविध्यमाह—**एतेषा**मिति । एतेषां रूपरसगंधस्पर्शानां पाकजत्वं पाकोऽग्निसंयोगस्तज्जन्यत्वं क्षितौ पृथिव्यामेव, अन्यत्र कुत्रचिज्जलतेजोवायुषु न, अर्थात्तेषु तेषामपाकजत्वमित्यर्थः । अग्निसंयोगेन घटादिष्वेव श्यामरूपादिनाशेन रक्तरूपाद्युत्पादो न जलादौ शतधा ताप्यमानेऽपीति भावः ॥—

**तत्रापि परमाणौ स्यात्पाको वैशेषिके नये ॥ २५ ॥**
**नैयायिकानां तु नये द्व्यणुकादावपीष्यते ॥**

पृथिवीगतपाकेऽपि मतभेदमाह—तत्रापीति। तत्रापि पृथिव्यवयवेष्वपि मध्ये परमाणौ पाकः स्यान्न द्व्यणुकादिषु, वैशेषिके नये पीलुपाकवादिवैशेषिकशास्त्रे। ते ह्येवं मन्यन्ते—अवयव्याक्रान्तावयवेषु पाको न संभवतीत्यतोऽग्निसंयोगेनावयविनाशे स्वतन्त्रेष्ववयवेष्वेव पाकः। तथाहि वह्निसंयोगात् परमाणौ कर्म ततः परमाण्वन्तरविभागेनारम्भकसंयोगनाशाद्द्व्यणुकनाशः, पश्चात्परमाणौ श्यामं रूपं विनश्यति रक्तं रूपं चोत्पद्यते, ततो रक्तपरमाणुषु द्रव्यारम्भानुगुणक्रियया विभागपूर्वसंयोगनाशारम्भकसंयोगैर्द्व्यणुकं ततो द्व्यणुके रक्तं रूपं चोत्पद्यते, एवं त्र्यणुकादिद्वारा पुना रक्तघटाद्युत्पत्तिः। तत्र परमाणौ रक्तरूपोत्पत्तौ परमाणुः समवायी तेजःसंयोगोऽसमवायी अदृष्टादिकमुष्णस्पर्शश्च निमित्तं, द्व्यणुकादौ रक्तरूपोत्पत्तौ तु द्व्यणुकादिः समवायी परमाण्वादिगतरक्तरूपं त्वसमवायी, अन्यत्सर्वं निमित्तमिति बोध्यम्। नैयायिकानां पिठरपाकवादिनां नये शास्त्रे तु द्व्यणुकादावपि। अपिशब्दः समुच्चये। परमाणुपर्यन्तेष्ववयवेषु अवयविनि च पाक इष्यते। अवयविनां हि सच्छिद्रत्वादग्नेरवयवाः सूक्ष्मास्तदन्तःप्रविशन्तीति नावयव्याक्रान्तावयवेषु पाकासंभव इत्यनन्तावयवनाशोत्पत्तिकल्पनाया गौरवपराहतत्वादवयविनि तदवयवेषु च युगपत्पाक इति कल्पना लघीयसीति ॥ २५ ॥—

**गणनाव्यवहारे तु हेतुः संख्याभिधीयते ॥ २६ ॥**

अथ संख्यां निरूपयति—गणनेति। गणनाव्यवहारे एको द्वौ दश षोडश शतं सहस्रमित्यादिपरिच्छेदकरणे हेतुरसाधारणं कारणं संख्याभिधीयते, सा च संख्यैकत्वादिपरार्धपर्यन्ता भवति। तदुक्तं—

एकदशशतसहस्रायुतलक्षप्रयुतकोटयः क्रमशः ॥
अर्बुदमब्जं खर्वं निखर्वमहापद्मशंकवस्तस्मात् ॥ १ ॥
जलधिश्चान्त्यं मध्यं परार्धमिति दशगुणोत्तरं संज्ञाः ॥
संख्यायाः स्थानानां व्यवहारार्थं कृतास्तज्ज्ञैरिति ॥ २ ॥ २६ ॥

**नित्येषु नित्यमेकत्वमनित्येऽनित्यमिष्यते ॥**
**द्वित्वादयः परार्धान्ता अपेक्षाबुद्धिजा मताः ॥ २७ ॥**

तत्रैकत्वं विभजते—नित्येष्विति। नित्येषु परमाण्वाकाशादिष्वेकत्वं नित्यम-

नित्ये च घटपटादावेकत्वमनित्यं कारणगतैकत्वजन्यत्वात्कार्यैकत्वस्य । द्वित्वादयः परार्धांताः संख्याभेदाः सर्वत्रानित्याः । तत्र हेतुमाह—**अपेक्षाबुद्धिजा** इति । अपेक्षाबुद्धिरग्रे वक्ष्यमाणलक्षणा अयमेकोयमेक इत्याकारा ततो जायते ॥ २७ ॥

## अनेकाश्रयपर्याप्ता एते तु परिकीर्तिताः ॥

उत्पन्नानामधिकरणमाह—**अनेकाश्रयेति** । एते द्वित्वादयोऽनेकाश्रयपर्याप्ताः द्वित्वं द्वयोस्त्रित्वं त्रिषु चतुष्ट्वं चतुर्षु पर्याप्तं, पर्याप्तिश्च कश्चित्संबन्धविशेषः ॥—

## अपेक्षाबुद्धिनाशाच्च तेषां नाशो निरूपितः ॥ २८ ॥

तेषां नाशसामग्रीमाह—**अपेक्षाबुद्धिरिति** । तत्रेयं रीतिः—अयमेकोऽयमेक इत्यपेक्षाबुद्ध्या द्वयोर्द्वित्वं जायते, तत्र द्वौ घटौ समवायिनौ, प्रत्येकमेकत्वं चासमवायि, अपेक्षाबुद्धिश्च निमित्तं, साच त्रिक्षणावस्थायिनी । तथाहि आदावपेक्षाबुद्धिस्ततो द्वित्वं जायते, ततो द्वित्वत्वनिर्विकल्पकं ज्ञानं, ततो द्वित्वत्वविशिष्टद्वित्वज्ञानं तदैवापेक्षाबुद्धिनाशस्ततो द्वित्वनाश इति, यतो यन्निमित्तमाश्रित्य जाता द्वित्वादयस्तन्नाशे नश्यन्तीति । अतएव यदीयापेक्षाबुद्धिजास्तस्यैव प्रत्यक्षा नान्यस्येति ॥ २८ ॥

## अनेकैकत्वबुद्धिर्या सापेक्षाबुद्धिरिष्यते ॥

नन्वपेक्षाबुद्धिः कीदृशीत्यत आह—**अनेकैकत्वेति** । अनेकेषामेकत्वादीनामयमेकोऽयमेकोऽयमेक इत्येवंरूपा या बुद्धिः साऽपेक्षाबुद्धिः । अतीन्द्रियेष्वपेक्षाबुद्धिर्योगिनामीशस्य च भवतीत्यर्थः ॥

## परिमाणं भवेन्मानव्यवहारस्य कारणम् ॥ २९ ॥
## अणु दीर्घं महद्ध्रस्वमिति तद्भेद ईरितः ॥
## अनित्ये तदनित्यं स्यान्नित्ये नित्यमिहेष्यते ॥ ३० ॥

परिमाणं निरूपयति—**परिमाणमिति** । अयं दीर्घोऽयमल्पोऽयं महानयमण्विति मानव्यवहारस्यासाधारणं कारणं परिमाणं, तद्विभजते—**अण्विति** । भावप्रधानोऽत्र निर्देशः । अणुत्वं महत्त्वं दीर्घत्वं ह्रस्वत्वमितिभेदाच्चतुर्विधमित्यर्थः । तत्राणुत्वसमानाश्रयं ह्रस्वत्वं महत्त्वसमानाश्रयं दीर्घत्वमिति नियमः । तच्चतुर्विधं परिमाणमनित्ये घटादावनित्यं, नित्ये चाकाशादौ नित्यम् ॥ २९—३० ॥

**संख्यातः परिमाणाच्च प्रचयादपि जायते ॥**
**अनित्यं**

तत्रानित्यस्य त्रिधोत्पत्तिमाह—**संख्यात** इति। अनित्यमिति पूर्वत्रान्वेति। अनित्यं परिमाणं क्वचित्संख्यातः क्वापि परिमाणात्क्वचन प्रचयाच्च जायते ॥—

**द्व्यणुकादौ तु संख्याजन्यमुदाहृतम् ॥ ३१ ॥**

तत्र संख्याजन्यं परिमाणमुदाहरति—**द्व्यणुकादा**विति। आदिपदेन त्र्यणुकं गृह्यते। द्व्यणुकत्र्यणुकयोः परिमाणं संख्याजन्यं परमाणुनिष्ठद्वित्वसंख्यातो द्व्यणुकनिष्ठत्रित्वसंख्यातश्च जायते न परमाणुद्व्यणुकपरिमाणतस्तथात्वे परिमाणस्य स्वसमानजातीयोत्कृष्टपरिमाणजनकतया द्व्यणुकस्याणुतरत्वं त्र्यणुकस्य चाणुतरतमत्वापत्त्याऽचाक्षुषत्वं स्यादिति प्राक् प्रपञ्चितम् ॥ ३१ ॥

**परिमाणं घटादौ तु परिमाणजमुच्यते ॥**

परिमाणजपरिमाणमाह—**परिमाण**मिति। घटादौ परिमाणं परिमाणजं कपालादिपरिमाणजन्यमुच्यते ॥—

**प्रचयः शिथिलाख्यो यः संयोगस्तेन जायते ॥ ३२ ॥**
**परिमाणं तूलकादौ**

प्रचयजपरिमाणमुदाहर्तुं प्रचयं तावन्निरूपयति—**प्रचय** इति। अवयवानां शिथिलोऽदृढः संयोगः प्रचयः तेन प्रचयेन तूलकादौ परिमाणं जन्यते, तूलपिंडादिपरिमाणं प्रचयजन्यमित्यर्थः ॥ ३२ ॥—

**नाशस्त्वाश्रयनाशतः ॥**

परिमाणनाशे सामग्रीमाह—**नाश** इति। परिमाणस्येति विपरिणमनीयम्। आश्रयस्य परिमाणवतो नाशतः परिमाणनाशो भवति, अतएव शरीरावयवोपचयेन परिमाणान्यथात्वदर्शनेन पूर्वपरिमाणनाशहेतुतदाश्रयपूर्वावयविनाशोऽभ्युपेयते इति ॥—

**संख्यावत्तु पृथक्त्वं स्यात्पृथक्प्रत्ययकारणम् ॥ ३३ ॥**

पृथक्त्वं निरूपयति—**संख्यावत्त्वि**ति। पृथक्प्रत्ययस्य इदमस्मात्पृथगिति व्यवहारस्य कारणमसाधारणं निमित्तं पृथक्त्वं नाम गुणः स्यात्तच्च संख्यावज्ज्ञेयम्, एकपृथक्त्वं नित्यगतं नित्यमनित्यगतमनित्यं, द्विपृथक्त्वादिकं सर्वत्रानित्यमपेक्षाबुद्धिजन्यमनेकाश्रयपर्याप्तमपेक्षाबुद्धिनाशनाश्यं चेत्यर्थः ॥ ३३ ॥

अन्योन्याभावतो नास्य चरितार्थत्वमिष्यते ॥
अस्मात्पृथगिदं नेति प्रतीतिर्हि विलक्षणा ॥ ३४ ॥

नन्विदमस्मात्पृथगित्यादिप्रतीतावर्थतोऽन्योन्याभाव एव प्रतीयते तत्कथं पृथक्त्वं नाम गुणान्तरं निरूप्यते तत्राह—अन्योन्याभावत इति । अस्य पृथक्त्वस्यान्योन्याभावतश्चरितार्थत्वमन्योन्याभावेनोपक्षीणत्वं तदन्तर्भाव इति यावन्न इष्यते नाभ्युपेयते, तत्र हेतुः हि यस्मादिदमस्मात्पृथक्—घटः पटात्पृथगिति, इदं न-घटः पटो नेति च प्रतीतिर्विलक्षणा, सा च विषयभेदमन्तरानुपपन्ना स्वविषयमन्योन्याभावभिन्नं पृथक्त्वं नाम गुणान्तरमर्थापयति । अन्यथा घटात्पटो नेत्यपि प्रयुज्येतेति भावः ॥ ३४ ॥

अप्राप्तयोस्तु या प्राप्तिः सैव संयोग ईरितः ॥

संयोगं निरूपयति—अप्राप्तयोरिति । अप्राप्तयोरमिलितयोर्या प्राप्तिर्मिलनं सा संयोगः । इमौ संयुक्ताविति प्रतीत्यसाधारणकारणं संयोग इत्यर्थः ।

कीर्तितस्त्रिविधस्त्वेष आद्योऽन्यतरकर्मजः ॥ ३५ ॥
तथोभयस्पंदजन्यो भवेत्संयोगजो परः ॥

तं विभजते—कीर्तित इति । एष संयोगः अन्यतरकर्मज उभयोरेकस्य कर्मणा जायते यः स प्रथमः । उभयस्पन्दजन्यः उभयोर्द्वयोः स्पन्देन कर्मणा जायते यः स द्वितीयः । संयोगाज्जायते यः स संयोगजसंयोगोऽपरस्तृतीयः ॥ ३५ ॥

आद्यस्तु श्येनशैलादिसंयोगः परिकीर्तितः ॥ ३६ ॥
मेषयोः संनिपातो यः स द्वितीय उदाहृतः ॥
कपालतरुसंयोगात्संयोगस्तरुकुंभयोः ॥ ३७ ॥
तृतीयः स्यात्

क्रमेण तानुदाहरति—आदिम इति । श्येनक्रियया श्येनशैलसंयोगः, आदिपदाद्धस्तक्रियया हस्तपुस्तकादिसंयोग आदिमोऽन्यतरकर्मजः । मेषयोर्युद्धार्थं परस्पराभिधावनक्रियया यः सन्निपातः संयोगः स द्वितीय उभयकर्मजः । एवं मल्लयोः सन्निपातोऽपि । कपालतर्वोः कारणाकारणयोः संयोगस्तरुकुम्भयोः कार्याकार्ययोर्यः संयोगः स तृतीयः संयोगजसंयोगः स्यात् । एवं हस्तपुस्तकसंयोगात्कायपुस्तकसंयोगोऽप्युदाहार्यः ॥ ३७ ॥

**कर्मजोऽपि द्विधैव परिकीर्तितः ॥**
**अभिघातो नोदनं च शब्दहेतुरिहादिमः ॥ ३८ ॥**
**शब्दाहेतुर्द्वितीयः स्याद्**

पुनः कर्मजसंयोगं विभजते—**कर्मजोऽपीति** । अभिघातो दण्डादिना भेर्यादेस्ताडनं, नोदनं हस्तादिनाङ्गुलिकादेः क्षेपणम् । आदिमोऽभिघातः, शब्द-हेतुर्दण्डादिना दुन्दुभ्यादौ ताडिते शब्दोत्पत्तिदर्शनात्, द्वितीयो नोदनाख्यः संयोगः शब्दाहेतुः करादिनाङ्गुलिकादौ क्षिप्ते शब्दोत्पत्त्यनुभवात् ॥ ३८ ॥

**विभागोऽपि त्रिधा भवेत् ॥**
**एककर्मोद्भवस्त्वाद्यो द्व्यकर्मोद्भवः परः ॥ ३९ ॥**
**विभागजस्तृतीयः स्यात्**

विभागं निरूपयति—**विभागोऽपीति**। इमौ विभक्तावपि प्रत्ययासाधारण-कारणं विभागः । सोऽपि त्रिधा एककर्मोद्भवोऽन्यतरकर्मजः, द्व्यकर्मोद्भव उभय-कर्मजः, विभागजो विभागजविभागः । उदाहरणानि प्रागुक्तान्येव । श्येनक्रियया श्येनशैलविभागोऽन्यतरकर्मजः, मेषयोर्मल्लयोर्वा कर्मभ्यां विभाग उभयकर्मजः, कपालतरुविभागात्कुंभतरुविभागो विभागजविभागः ॥ ३९ ॥

**तृतीयोऽपि द्विधा भवेत् ॥**
**हेतुमात्रविभागोत्थो हेत्वहेतुविभागजः ॥ ४० ॥**

अन्त्यं विभजते—**तृतीय** इति । तृतीयो विभागजविभागोऽपि द्विधा द्विप्रकारो भवेत् । एको हेतुमात्रविभागोत्थः कारणमात्रविभागजन्यः । द्वितीयो हेत्वहेतु-विभागजः कारणाकारणविभागजश्चेति, तत्र द्वितीयः कपालतरुविभागात्कुंभतरु-विभागो हस्तपुस्तकविभागात्कायपुस्तकविभागः प्रागुक्त एव । प्रथमस्तु यत्र कपा-लकर्मणा कपालद्वयविभागे सति घटारम्भकसंयोगनाशाद्घटनाशे च सति कपाल-स्याकाशादिविभागो जायते स विभागो हेतुमात्रविभागजः कपालाकाशविभागस्य कपालद्वयविभागजन्यत्वात् । नच कपालकर्मणा कपालद्वयविभागवत् कपालाकाश-विभागोऽपि जन्यतामिति वाच्यम् । आरम्भकसंयोगपरिपन्थिविभागजनकस्य क-र्मणस्तदनारम्भकसंयोगपरिपन्थिविभागजनकत्वासंभवादन्यथोज्जृम्भमाणं कमलकु-ड्मलं भज्येतेति ॥ ४० ॥

**परत्वमपरत्वं च द्विविधं परिकीर्तितम् ॥**
**दैशिकं कालिकं चेति मूर्त एव तु दैशिकम् ॥ ४१ ॥**

परत्वापरत्वे निरूपयति—**परत्वमिति** । परापरव्यवहारासाधारणकारणे परत्वापरत्वे विभजते—**परत्वमिति** । दैशिकं दिक्कृतं कालिकं कालकृतम् । दिक्कृतयोराश्रयं निर्दिशति—**मूर्त एवेति** । मूर्ते परिच्छिन्नपरिमाणवत्येव पदार्थे दैशिकं परत्वमपरत्वं वर्तते । तत्रापि दूरस्थे परत्वं समीपस्थेऽपरत्वम् ॥ ४१ ॥

**परत्वं मूर्तसंयोगभूयस्त्वज्ञानतो भवेत् ॥**
**अपरत्वं तदल्पत्वबुद्धितः स्यादितीरितम् ॥ ४२ ॥**

तदेव विवृणोति—**परत्वमिति** । दिक्कृतं परत्वं मूर्तसंयोगभूयस्त्वज्ञानतोऽपरत्वं च मूर्तसंयोगाल्पत्वज्ञानतः स्यात् । अयमर्थः । अत्रावधित्वार्थे तृतीयापेक्षा यदपेक्षया यस्माद्यो बहुतरमूर्तसंयोगान्तरितः स तदपेक्षया तस्मात्परः, यथा कुरुक्षेत्राद्धरिद्वारमपेक्ष्य वाराणसी परा । यदपेक्षया च यस्माद्योऽल्पतरमूर्तसंयोगान्तरितः स तदपेक्षया तस्मादपरः, यथा कुरुक्षेत्राद्वाराणसीमपेक्ष्य हरिद्वारमपरमिति । दैशिकपरत्वापरत्वयोः स्वाश्रयपिंडौ समवायिनौ ॥ ४२ ॥

**तयोरसमवायी तु दिक्संयोगस्तदाश्रये ॥**

असमवायिनमाह—**तयोरिति** । तदाश्रये दैशिकपरत्वापरत्वाश्रये दिक्संयोगस्तयोर्दैशिकपरत्वापरत्वोरसमवायी । अपेक्षाबुद्ध्यादि निमित्तम् ॥ ४२ ॥

**दिवाकरपरिस्पन्दभूयस्त्वज्ञानतो भवेत् ॥ ४३ ॥**
**परत्वमपरत्वं तु तदीयाल्पत्वबुद्धितः ॥**
**अत्र त्वसमवायी स्यात्संयोगः कालपिण्डयोः ॥ ४४ ॥**
**अपेक्षाबुद्धिनाशाच्च नाशस्तेषां निरूपितः ॥**

कालकृते परत्वापरत्वे तु जन्यद्रव्ये एव, तत्रापि ज्येष्ठे परत्वं कनिष्ठे चापरत्वं, तदेव विवृणोति—**दिवाकरेति** । दिवाकरः सूर्यस्तस्य परिस्पदभूयस्त्वज्ञानतः कालिकं परत्वं तदीयाल्पत्वबुद्धितः सूर्यपरिस्पन्दाल्पत्वज्ञानतः कालिकमपरत्वं भवेत् । अयं भावः । यत्सूर्यस्पन्दापेक्षया यस्य सूर्यस्पन्दोऽधिकः स ज्येष्ठः, यस्य च स न्यूनः स कनिष्ठो, यथा चैत्रीयसूर्यस्पन्दापेक्षया मैत्रीयसूर्यस्पदोऽधिकोऽतश्चैत्रा-

न्मैत्रो ज्येष्ठो मैत्रापेक्षयाल्पसूर्यस्पन्दकश्चैत्रः कनिष्ठ इति कालिकपरत्वापरत्वयोर्ज्येष्ठकनिष्ठपिण्डौ समवायिनौ, कालपिण्डयोः संयोगस्त्वसमवायी, अपेक्षाबुद्ध्यादिकं निमित्तमिति बोध्यम्। अतएवापेक्षाबुद्धिनाशेन तेषां दैशिककालिकपरत्वादीनां नाशो निरूपितः ॥ ४३-४४ ॥—

**बुद्धेः प्रपञ्चः प्रागेव प्रायशो विनिरूपितः ॥ ४५ ॥**
**अथावशिष्टोऽप्यपरः प्रकारः परिदर्श्यते ॥**
**अप्रमा च प्रमा चेति ज्ञानं द्विविधमिष्यते ॥ ४६ ॥**

बुद्धिं निरूपयिष्यन् प्राङ्निरूपितं तद्भेदं स्मारयन्ननिरूपितं च निरूपयितुं प्रतिजानीते—**बुद्धेरिति**। बुद्धिं विभजते—**अप्रमेति**। अप्रमा अयथार्थज्ञानं, प्रमा च यथार्थज्ञानम् ॥ ४५-४६ ॥

**तच्छून्ये तन्मतिर्या स्यादप्रमा सा निरूपिता ॥**
**तत्प्रपञ्चो विपर्यासः संशयोऽपि प्रकीर्तितः ॥ ४७ ॥**

अप्रमां लक्षयति—**तच्छून्य** इति। तच्छून्ये तदभाववति या तन्मतिः तत्प्रकारकं ज्ञानं सा अप्रमा स्यात्, यथा रजतत्वाभाववति शुक्तिशकले रजतत्वप्रकारकं ज्ञानमप्रमा। तां विभजते—**तत्प्रपञ्च** इति। विपर्यासो विपर्ययः संशयश्च तत्प्रपंचोऽप्रमाभेद इत्यर्थः ॥ ४७ ॥

**आद्यो देहेष्वात्मबुद्धिः शंखादौ पीततामतिः ॥**
**भवेन्निश्चयरूपा सा**

तत्र विपर्ययं दर्शयति—**आद्य** इति। देहेष्वात्मत्वशून्येषु या निश्चयरूपाऽऽत्मबुद्धिः यद्गौरोऽहं कृशोऽहमित्याद्यात्मत्वप्रकारकं ज्ञानं, निर्णयात्मकं ज्ञानं, या च शंखादौ पीतत्वाभाववति निश्चयरूपा पीतता मतिर्निर्णयात्मकं ज्ञानं पीतः शंख इति पीतत्वप्रकारकं ज्ञानं, सा मतिराद्यो विपर्यासो भ्रम उच्यते ॥—

**संशयोऽथ प्रदर्श्यते ॥ ४८ ॥**
**किंस्विन्नरो वा स्थाणुर्वेत्यादिबुद्धिस्तु संशयः ॥**

संशयं लक्षयितुमाह—**संशयोऽथेति**। किंस्विदिति निपातो वितर्के। अयं पुरो दृश्यमानः किं नरोऽथवा स्थाणुरित्याकारिका बुद्धिः संशय इत्यर्थः ॥ ४८ ॥—

**तदभावाप्रकारा धीस्तत्प्रकारा तु निश्चयः ॥ ४९ ॥**
**स संशयो मतिर्या स्यादेकत्राभावभावयोः ॥**

प्रसंगान्निर्णयसंशययोर्लक्षणमाह—**तदभावेति** । यथाऽयं घट इति घटत्वप्रकारकं तदभावाप्रकारकं ज्ञानं निश्चयः, एकत्रैकस्मिन्धर्मिणि भावाभावयोर्या मतिर्विरुद्धभावाभावप्रकारकं यज्ज्ञानं स संशयः। यथा नरो वा स्थाणुर्वेत्यत्रैकस्मिन्धर्मिणि वृक्षे विरुद्धनरत्वस्थाणुत्वावगाहिनी मतिः संशयः । समूहालंबनस्यापि भावाभावावगाहित्वात्तत्रातिव्याप्तिवारणायैकत्रेति । घटो द्रव्यमित्यादौ तद्वारणाय विरुद्धेति ॥ ४९ ॥–

**साधारणादिधर्मस्य ज्ञानं संशयकारणम् ॥ ५० ॥**

संशये बीजमाह—**साधारणेति** । आदिपदेनासाधारणधर्मज्ञानसंग्रहः । यथा पुरुषस्थाणूभयसाधारणमुच्चैस्त्वं दृष्ट्वा स्थाणुर्वा पुरुषो वेति संशयः साधारणधर्मजन्यः । असारणधर्मजस्तु यथा—शब्दमात्रवृत्ति शब्दत्वं नित्यानित्यानुगतमवगत्य शब्दो नित्योऽनित्यो वेति संशयः ॥ ५० ॥

**दोषोऽप्रमाया जनकः प्रमायास्तु गुणो भवेत् ॥**
**पित्तदूरत्वादिरूपो दोषो नानाविधो मतः ॥ ५१ ॥**

अथ प्रसंगात्प्रमाप्रमयोरुत्पत्तिज्ञप्त्योः परतस्त्वादुभयोरुत्पत्तौ हेतुं तावदाह—**दोष इति** । अप्रमोत्पत्तौ दोषः प्रमोत्पत्तौ च गुणः कारणमित्यर्थः । दोषं निरूपयति—**पित्तेति** । क्वचिच्छङ्खपीतिमादिभ्रमे पित्तं, क्वापि चन्द्रप्रादेशिकत्वादौ दूरत्वं क्वापि रजतादिभ्रमे दूरत्वसादृश्यज्ञानादि, रज्जूरगादौ मन्दान्धकारादिर्वंशोरगादौ मंडूकवसाञ्जनादि । एवं दोषाणां नानाविधत्वम् ॥ ५१ ॥

**प्रत्यक्षे तु विशेष्येण विशेषणवता समम् ॥**
**सन्निकर्षो गुणस्तु स्याद्**

अथ प्रमाचतुष्टये क्रमाद्गुणानाह—**प्रत्यक्षे त्विति** । विशेषणवता विशेष्येण घटत्वादिमता घटादिना समं सह सन्निकर्षश्चक्षुरादीन्द्रियसंयोगः प्रत्यक्षे प्रत्यक्षप्रमोत्पत्तौ गुणः, शुक्तौ रजतादिज्ञाने प्रमात्वं माभूदिति विशेषणवतेत्युक्तम् ॥–

**अथ त्वनुमितौ पुनः ॥ ५२ ॥**

**पक्षे साध्यविशिष्टे तु परामर्शो गुणो भवेत् ॥**

अनुमितौ गुणमाह—**अथ त्विति** । साध्यविशिष्टे वह्न्यादिमति पक्षे गिर्यादौ परामर्शः व्याप्यवैशिष्ट्यज्ञानं वह्न्यादिव्याप्यधूमादिलिङ्गवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानमनुमित्युत्पत्तौ गुणः ॥ ५२ ॥

**शक्ये सादृश्यबुद्धिस्तु भवेदुपमितौ गुणः ॥ ५३ ॥**

उपमितौ तमाह—**शक्य इति** । शक्ये गवयादिपदवाच्ये गवयादिपिंडे सादृश्यबुद्धिर्गवादिसादृश्यज्ञानमुपमितौ गुणः ॥ ५३ ॥

**शाब्दबोधे योग्यतायास्तात्पर्यस्याथवा प्रमा ॥**

**गुणः स्याद्**

शाब्दे गुणं निर्दिशति—**शाब्देति** । योग्यताया अर्थाबाधस्य तात्पर्यस्य वक्त्रभिप्रायस्य वा प्रमा यथार्थज्ञानं शाब्दबोधे गुणः स्यात् ॥—

**भ्रमभिन्नं तु ज्ञानमत्रोच्यते प्रमा ॥ ५४ ॥**

**अथवा तत्प्रकारं यज्ज्ञानं तद्वद्विशेष्यकम् ॥**

**तत्प्रमा**

अथ प्रमां लक्षयति—**भ्रमेति** । भ्रमः पूर्वोक्तलक्षणो विपर्ययस्तद्भिन्नं ज्ञानं प्रमोच्यते । ननु यदि शुक्तिरजतयोरिमे रजते इति ज्ञानमजनिष्ट तदा रजतांशे प्रमात्वं न स्यात्तस्य भ्रमसंवलितत्वेन भ्रमभिन्नत्वाभावादित्याशंक्य लक्षणान्तरमाह—**अथवेति** । तद्वान्विशेष्यो यस्य तत्तद्वद्विशेष्यकं, सः प्रकारो विशेषणं यत्र तत्तत्प्रकारमेतादृशं यत् ज्ञानं तत्प्रमा, तद्वति तत्प्रकारकज्ञानमित्यर्थः । यथा घटत्ववति घटत्वप्रकारकं घटोऽयमिति ज्ञानम् । तथा च रजतांशे रजतज्ञानस्य रजतत्ववति रजतत्वप्रकारकत्वात्प्रमात्वमेवेत्यर्थः ॥ ५४ ॥

**न प्रमा नापि भ्रमः स्यान्निर्विकल्पकम् ॥५५॥**

**प्रकारतादि शून्यं हि संबन्धानवगाहि तत् ॥**

ननु निर्विकल्पात्मकं ज्ञानं भ्रमः प्रमा वेत्याकाङ्क्षायामाह—**नेति** । नोभयात्मकं तदित्यर्थः । तत्र हेतुमाह—**प्रकारतादीति** । हि यस्मात्तन्निर्विकल्पात्मकं ज्ञानं

प्रकारतादिशून्यं प्रकारप्रकारिणोश्च संबन्धं नावगाहते भ्रमस्य तदभाववति तत्प्रकारकत्वात्प्रमायाश्च तद्वति तत्प्रकारकत्वादस्य च निष्प्रकारकत्वादुभयवैलक्षण्यमित्यर्थः ॥ ५५ ॥

**प्रमात्वं न स्वतोग्राह्यं संशयानुपपत्तितः ॥ ५६ ॥**

प्रमाप्रमयोरुत्पत्तौ परतस्त्वं प्राङ्न्यरूपि । अप्रमाया ज्ञप्तौ परतस्त्वं सर्वसंमतं, प्रमाया ज्ञप्तौ स्वतस्त्वं केचिदाहुस्तन्निराह—**प्रमात्वमिति** । प्रमात्वं प्रमागतयाथार्थ्यं स्वतो न ग्राह्यं किंतु परतोऽनुमानादिना, तत्र हेतुः संशयानुपपत्तितः, यदि प्रमात्वं स्वतो गृह्येत तदाऽनभ्यासदशायामुत्पन्ने जलज्ञाने इदं प्रमा न वेति संशयो न स्यात् । अयमर्थः, ज्ञानगतप्रामाण्यस्य स्वतस्त्वं नाम ज्ञानग्राहकसामग्रीग्राह्यत्वं, तदतिरिक्तग्राह्यत्वं परतस्त्वं, सा च सामग्री गुरुमते स्वप्रकाशं ज्ञानमेव, भट्टनये तु ज्ञानजन्या ज्ञातता, मुरारिपथि त्वनुव्यवसायस्तत्र यदि ज्ञानगतप्रामाण्यं स्वतो गृह्येत तदैवं विचार्यम्—अनभ्यासदशोत्पन्नं ज्ञानं ज्ञातं न वा, आद्ये ज्ञाने ज्ञाते तद्गतप्रामाण्यस्यापि ज्ञातत्वान्ममोत्पन्नं जलज्ञानं प्रमा न वेति संशयो न स्यात् । द्वितीयेऽपि धर्मिज्ञानाभावात्संशयो न स्याद्भवति च संशयोऽतो ज्ञानगतप्रामाण्यं परतो गृह्यत इत्येवोचितं पश्यामः । तथाहि प्रथमं जलं ज्ञात्वा तत्र गत्वा जलं लब्ध्वा पश्चादनुमिमीते इदं ममोत्पन्नं जलज्ञानं प्रमा समर्थप्रवृत्तिजनकत्वाद्यतिरेकेऽप्रमावदिति । एवमप्रमायामप्रमात्वं पुरोवर्तिनि तदभावस्य तेन ज्ञानेन ग्रहीतुमशक्यत्वात्परत एव गृह्यत इति तु सर्वसंमतम् ॥५६॥

**व्यभिचारस्याग्रहोऽपि सहचारग्रहस्तथा ॥**
**हेतुर्व्याप्तिग्रहे**

पूर्वं व्याप्तिरुक्ता तद्ग्रहोपायस्तु नादर्शीत्यतस्तमत्राह—**व्यभिचारेति** । व्यभिचाराग्रहः सहचारग्रहश्च व्याप्तिग्रहे हेतुः कारणं, व्यभिचारग्रहस्य व्याप्तिग्रहप्रतिबन्धकत्वात्तदभावस्तद्ग्रहे कारणं, सहचारग्रहस्त्वन्वयव्यतिरेकसिद्धो हेतुः, केचित्तु भूयोदर्शनस्य व्याप्तिज्ञानोपायत्वं प्रतिपेदिरे तन्न सम्यक्, व्यभिचारास्फूर्तौ सकृद्दर्शनेनापि व्याप्तिग्रहसंभवात् ॥—

**तर्कः क्वचिच्छंकानिवर्तकः ॥ ५७ ॥**

व्यभिचारशंकाया व्याप्तिग्रहप्रतिबंधकत्वात्तन्निवर्तनोपायमाह—**तर्क** इति ।

---

१ सामग्री जन्यग्रहः । २ ज्ञातता लिङ्गकानुमितिः ।

क्वचित्स्थले तर्कः शंकाया निवर्तको भवति । तर्को नाम व्याप्यारोपेण व्यापकारोपः, यथा धूमवति वह्न्यनुमाने कृते धूमोऽस्तु मास्तु वह्निरिति केनचिद्व्यभिचारे शंकिते तन्निवारणाय यद्यत्र वह्निर्न स्यात्तर्हि धूमोऽपि न स्यादिति हेतुं विना कार्यानुदयलक्षणस्तर्कः प्रयुज्यते तत्र वह्न्यभावो व्याप्यो धूमाभावस्तु व्यापकः । तेन तर्केण धूमस्तु दृश्यतेऽतो वह्निरप्यस्तीत्यनुमितिप्रतिबंधकव्यभिचारशंकानिवृत्त्यानुमितिदार्ढ्यं भवति । क्वचिदित्युक्त्या क्वचिद्भूयोदर्शनेन क्वापि स्वत एव व्यभिचारशंकानिवृत्तिर्भवतीति सूच्यते ॥ ५७ ॥

**साध्यस्य व्यापको यस्तु हेतोरव्यापकस्तथा ॥**
**स उपाधिर्भवेत्**

अत्रैव प्रसङ्गात्परकीयव्याप्तिग्रहप्रतिबन्धार्थमुपाधिमाह—**साध्यस्येति**। साध्यस्य व्यापकः साध्यसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगी, हेतोः साधनस्याव्यापकः साधनसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगी यः स उपाधिः, पर्वतो धूमवान्वह्नेरित्यत्रार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः, यत्र धूमस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोग इति साध्यव्यापकता, यत्र वह्निस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोग इति तु नायोगोलके तदभावादिति साधनाव्यापकता ॥—

**तस्य निष्कर्षोऽयं प्रदर्श्यते ॥ ५८ ॥**

**सर्वे साध्यसमानाधिकरणाः स्युरुपाधयः ॥**
**हेतोरेकाश्रये येषां स्वसाध्यव्यभिचारिता ॥ ५९ ॥**

उपाधेस्त्रैविध्यमभिप्रेत्य सर्वसाधारणलक्षणप्रदर्शनायाह—**तस्येति**। तस्योपाधेरयं वक्ष्यमाणो निष्कर्षो निर्गलितार्थः प्रदर्श्यते । तमेवाह—**सर्वे इति**। **येषामुपाधीनां हेतोः** साधनस्य **एकाश्रये** एकस्मिन्नधिकरणे स्वसाध्यव्यभिचारिता स्वमुपाधिः स्वस्य साध्यस्य च व्यभिचारिता ते सर्वे उपाधयः स्युः । कीदृशास्ते? साध्यसमानाधिकरणाः साध्येन समानमधिकरणं येषां ते साध्याधिकरणे येषां व्यभिचारो नास्तीत्यर्थः ॥ अत्र सामान्यलक्षणलाभाय यद्धर्मावच्छिन्नत्वं साध्ये तद्धर्मावच्छिन्नत्वं साधने च क्रमाद्विशेषणं देयम् । तथा च यद्धर्मावच्छिन्नसाध्यवन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वे सति तद्धर्मावच्छिन्नसाधनवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमुपाधित्वमिति लक्षणं पर्यवसन्नम् । तथाहि-उपाधिस्त्रिविधः—केवलसाध्यव्यापकः, पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकः, साधनावच्छिन्न-

साध्यव्यापकश्चेति । तत्राद्य आर्द्रेन्धनसंयोगः प्रागुक्त एव, द्वितीयो वायौ प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वेन प्रत्यक्षत्वे साध्ये उद्भूतरूपवत्त्वम् । तद्धि केवलस्य प्रत्यक्षत्वस्य साध्यस्य व्यापकं न भवति नीरूपेऽप्यात्मनि प्रत्यक्षत्वस्य सत्त्वादपि तु पक्षो वायुस्तद्गतो धर्मो वहिर्द्रव्यत्वं तदवच्छिन्नस्य साध्यस्य प्रत्यक्षत्वस्य व्यापकमात्मनस्त्वन्तर्द्रव्यत्वान्न व्यभिचारः, साधनस्य च प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वस्याव्यापकमुद्भूतरूपवत्त्वं वायावेव तदभावादित्यस्योपाधित्वं सिद्धम् । तृतीयो यथा स श्यामो मित्रातनयत्वादित्यत्र शाकपाकजत्वं, तद्धि न केवलसाध्यव्यापकं श्यामपटे व्यभिचारात्, मित्रातनयत्वावच्छिन्नश्यामे शाकपाकजत्वसत्त्वात् ।साधनस्य मित्रातनयत्वस्य चाव्यापकं, द्वितीये सितमित्रातनये तदसत्त्वात् । एवं ध्वंसो विनाशी जन्यत्वादित्यत्रापि भावत्वं जन्यत्वलक्षणसाधनावच्छिन्नसाध्यविनाशित्वव्यापकं साधनजन्यत्वाव्यापकं च बोध्यं, न च केवलसाध्यव्यापकं, विनाशवति प्रागभावे भावत्वाभावादिति । एवं त्रिष्वपि सामान्यलक्षणं संगमनीयम् । तथाहि—आर्द्रेन्धनसंयोगस्य पर्वततत्प्रायःपिण्डान्यतरत्वावच्छिन्नधूमवन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वे सति पर्वततत्प्रायःपिण्डान्यतरत्वावच्छिन्नवह्निमन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वादुपाधित्वं, एवमुद्भूतरूपवत्त्वस्य वहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्ववन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वे सति वहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्ववन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वादुपाधित्वं, एवं शाकपाकजत्वस्य मित्रातनयत्वावच्छिन्नश्यामत्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वे सति मित्रातनयत्वावच्छिन्नमित्रातनयनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वादुपाधित्वं, एवं जन्यत्वावच्छिन्नविनाशित्वव्यापकत्वे सति जन्यत्वावच्छिन्नजन्यत्वाव्यापकत्वाद्भावत्वमुपाधिः । एवमन्यत्रापि सुधीभिरूहनीयम् ॥ ५८–५९ ॥

## व्यभिचारस्यानुमानमुपाधेस्तु प्रयोजनम् ॥

उपाधेः फलमाह—**व्यभिचारस्येति** । स्वव्यभिचारेण साध्यव्यभिचारस्यानुमानमुपाधेः प्रयोजनं, अयं धूमवान्वह्नेरित्यत्र वह्निर्धूमव्यभिचारी धूमव्यापकार्द्रेन्धनसंयोगव्यभिचारित्वादिति साध्यव्यभिचारानुमानं, एवं मित्रातनयत्वं श्यामत्वव्यभिचारि मित्रातनयत्वावच्छिन्नश्यामत्वव्यापकशाकपाकजत्वव्यभिचारात् । एवंप्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वं प्रत्यक्षत्वव्यभिचारि वहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वव्यापकोद्भूतरूपवत्त्वव्यभिचारात् । एवं जन्यत्वं विनाशित्वव्यभिचारि जन्यत्वावच्छिन्नविनाशित्वव्यापकभावत्वव्यभिचारादित्यूह्यम् ॥—

**शब्दोपमानयोर्नैव पृथक्प्रामाण्यमिष्यते ॥ ६० ॥**
**अनुमानगतार्थत्वादिति वैशेषिकं मतम् ॥**
**तन्न सम्यग्विना व्याप्तिबोधं शब्दादिबोधतः ॥ ६१ ॥**

प्रसंगात्प्रत्यक्षानुमानमात्रप्रामाण्यवादिवैशेषिकमतं पराकर्तुमनुभाषते—**शब्दे-ति**। शब्दोपमानयोः प्रामाण्यं पृथक् अनुमानाद्यतिरिक्तं नेष्यते, तत्र हेतुः **अनुमानगतार्थत्वात्** अनुमाने तयोरन्तर्भावात्। एते पदार्थाः, मिथःसंसर्गवन्तो योग्यतादिमत्पदोपस्थापितत्वात्तादृशपदार्थवत्। एवं गवयपदं सप्रवृत्तिनिमित्तकं साधुपदत्वादित्यनुमानेन पक्षधर्मताबलाद्गवयत्वप्रवृत्तिनिमित्तकत्वं सिध्यतीति तद्दूषयति—**तन्नेति**। तत्र हेतुः **विनेति**। न हि सर्वत्र शब्दोपमानबोधस्थले व्याप्तिबोधापेक्षेति नियमोऽस्तीति भावः ॥ ६०–६१ ॥

**द्वैविध्यं तु भवेद्व्याप्तेरन्वयव्यतिरेकतः ॥**
**अन्वयव्याप्तिरुक्तैव व्यतिरेकिण्यथोच्यते ॥ ६२ ॥**

एवं व्याप्तिग्रहोपायं तत्प्रतिबन्धकनिवर्तकं तत्प्रतिबन्धहेतुं च सपरिकरं निरूप्य तां व्याप्तिं विभजते—**द्वैविध्यमिति**। व्याप्तिर्द्विधा अन्वयव्याप्तिर्व्यतिरेकव्याप्तिश्च, तत्राद्या 'व्याप्तिः साध्यवदन्यस्मिन्नसंबन्ध उदाहृत' इत्यत्र प्रागुक्ता। द्वितीया लघुनोच्यते ॥ ६२ ॥

**साध्याभावव्यापकत्वं हेत्वभावस्य यद्भवेत् ॥**

तामेव लक्षयति—**साध्याभावेति**। यत्र व्याप्तौ हेत्वभावस्य साधनाभावस्य साध्याभावव्यापकत्वं भवेत्सा व्यतिरेकव्याप्तिः। साधनाभावो व्यापकः साध्याभावो व्याप्यः। तथा च साध्याभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वं साधनस्य व्यतिरेकव्याप्तिरिति फलितम्। अयं भावः—अनुमानं हि त्रिविधं व्याप्तिद्वैविध्यात्। तथाहि केवलान्वयि केवलव्यतिरेकि अन्वयव्यतिरेकि चेति भेदात्, यत्र विपक्षाभावात्केवलान्वयव्याप्त्या साध्यं साध्यते तत्केवलान्वयि, यथा घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वादित्यत्र सर्वस्याभिधेयत्वाद्विपक्षासत्त्वेनान्वयव्याप्त्यैव साध्यं साध्यते १॥ यत्र तु सपक्षासत्त्वात्केवलव्यतिरेकव्याप्त्यैव साध्यं साध्यते तत्केवलव्यतिरेकि। यथा पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वादित्यत्र जलादित्रयोदशप्रतियोगिकान्योन्याभावानां

पक्षातिरिक्ते क्वापि निश्चितत्वाभावेन सपक्षासत्त्वाद्व्यतिरेकव्याप्त्यैव साध्यं साध्यते, तथाहि यदितरेभ्यो न भिद्यते न तद्गन्धवद्यथा जलमिति । अत्रेतरभेदः साध्यस्तदभावो व्याप्यः । गन्धवत्त्वं साधनं तदभावो व्यापकः । तथा च साध्याभाव इतरभेदाभावस्तद्व्यापकीभूतो योऽभावो गन्धवत्त्वाभावस्तत्प्रतियोगित्वं गन्धवत्त्वस्येति लक्षणसमन्वयः। यत्र च सपक्षविपक्षसद्भावेनोभयव्याप्तिभ्यां साध्यं साध्यते तदन्वयव्यतिरेकि । यथा वह्निमान्धूमादित्यत्र निश्चितसाध्यवतो महानसादेर्निश्चितसाध्याभाववतो ह्रदादेश्च सत्त्वादुभयथा व्याप्तिसंभवः । यत्र धूमस्तत्राग्निर्यथा महानसमित्यन्वयव्याप्तिः, यत्र वह्न्यभावस्तत्र धूमाभावो यथा ह्रद इति व्यतिरेकव्याप्तिः। अन्वये यद्व्याप्यं व्यतिरेके तदभावो व्यापकः, यच्चान्वये व्यापकं व्यतिरेके तदभावो व्याप्यः, उक्तं च—

अन्वये साधनं व्याप्यं साध्यं व्यापकमिष्यते ॥
साध्याभावोऽन्यथा व्याप्यो व्यापकः साधनात्ययः ॥ १ ॥
व्याप्यस्य वचनं पूर्वं व्यापकस्य ततः परम् ॥
एवं परीक्षिता व्याप्तिः स्फुटीभवति तत्त्वत इति ॥ २ ॥—

**अर्थापत्तेस्तु नैवेह प्रमाणान्तरतेष्यते ॥ ६३ ॥**
**व्यतिरेकव्याप्तिबुद्ध्या चरितार्था हि सा यतः ॥**

अर्थापत्तेः प्रमाणान्तरत्वं केचनाहुस्तन्निरस्यति—**अर्थापत्तेरिति**। प्रमाणान्तरता प्रत्यक्षादिप्रमाणचतुष्टयातिरिक्तता, तत्र हेतुं संगृह्णाति—**व्यतिरेकेति** । हि यस्मात्साऽर्थापत्तिर्व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानेन चरितार्था कृतकार्याऽन्यथासिद्धेति यावत् । तथाहि पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते इति श्रुते देवदत्तो रात्रौ भुङ्क्ते दिवाऽभुञ्जानत्वे सति पीनत्वात् । यो रात्रौ न भुङ्क्ते नासौ दिवाऽभुञ्जानत्वे सति पीन इति व्यतिरेकव्याप्त्यैव रात्रिभोजने सिद्धे किमर्थापत्तिपार्थक्यग्रहेणेति भावः ॥६३॥—

**सुखं तु जगतामेव काम्यं धर्मेण जायते ॥ ६४ ॥**

एवं बुद्धिं सोपस्करं निरूप्य क्रमप्राप्तं सुखं गुणं लक्षयति—**सुखं त्विति** । जगतां प्राणिमात्रस्य काम्यमनुकूलवेदनीयतया रागविषयः सुखं, तत्कारणमाख्याति—**धर्मेणेति** । धर्मेण वेदविहितकर्मजन्यादृष्टेन जन्यते, सुखत्वावच्छिन्नं प्रति धर्मत्वावच्छिन्नं कारणमित्यर्थः ॥ ६४ ॥

**अधर्मजन्यं दुःखं स्यात्प्रतिकूलं सचेतसाम् ॥**

दुःखं लक्षयति—**अधर्मेति**। अधर्मतो वेदनिषिद्धकर्मजन्यादृष्टतो जन्यं सचेतसां प्राणिमात्रस्य स्वाभाविकद्वेषविषयं दुःखमित्यर्थः ॥—

**निर्दुःखत्वे सुखे चेच्छा तज्ज्ञानादेव जायते ॥ ६५ ॥**
**इच्छा तु तदुपाये स्यादिष्टोपायत्वधीर्यदि ॥**

इच्छां निरूपयति—**निर्दुःखत्व** इति। इच्छा कामो राग इति यावत्। सा च द्विधा फलविषयिणी उपायविषयिणी च। तत्रेच्छाविषयफलस्वरूपं तद्गोचरेच्छोत्पत्तौ हेतुं च निर्दिशति निर्दुःखत्व इति। निर्दुःखत्वं दुःखाभावः सुखं च फलं पुरुषार्थः[1], तत्र चेच्छा तज्ज्ञानादेव तयोर्निर्दुःखत्वसुखयोर्ज्ञानादेव जायते फलविषयकेच्छाजनने फलज्ञानमेव हेतुरित्यर्थः। उपायगोचरेच्छायां हेतुमाह—**इच्छेति**। यदि उपाये इष्टोपायत्वधीर्भवति इदं दुःखाभावस्य सुखस्य वा साधनमिति ज्ञानं भवति तदा तदुपाये इष्टोपाये इच्छा स्यादुपायेच्छायामिष्टसाधनताज्ञानं कारणमित्यर्थः ॥ ६५ ॥—

**चिकीर्षा कृतिसाध्यत्वप्रकारेच्छा तु या भवेत् ॥ ६६ ॥**
**तद्धेतुः कृतिसाध्येष्टसाधनत्वमतिर्भवेत् ॥**
**बलवद्द्विष्टहेतुत्वमतिः स्यात्प्रतिबन्धिका ॥ ६७ ॥**
**तदहेतुत्वबुद्धेस्तु हेतुत्वं कस्यचिन्मते ॥**

अथेच्छाविशेषं चिकीर्षां स्वरूपतो हेतुतश्च दर्शयति—**चिकीर्षेति**। कृतिसाध्यत्वं प्रकारो यत्र सा इच्छा चिकीर्षा। कृतिसाध्यक्रियाविषयिणीच्छा चिकीर्षा। पिपक्षतीत्यस्य पाकं कृत्या साधयितुमिच्छतीत्यर्थः। कृतिसाध्येष्टसाधनत्वमतिः कृतिसाध्यत्वस्येष्टसाधनत्वस्य च ज्ञानं तद्धेतुः चिकीर्षाहेतुः। चिकीर्षायां प्रतिबन्धकमाह—**बलवदिति**। बलवदवश्यंभावि यत् द्विष्टं द्वेषविषयमनिष्टं तद्धेतुत्वस्य तत्साधनताया मतिर्ज्ञानं प्रतिबन्धिका चिकीर्षां प्रतिबध्नातीति भावः। चिकीर्षाजनने मतान्तरमाह—**तदिति**। तस्य बलवदनिष्टस्याहेतुत्वबुद्धेरजन-

---

१ यज्ज्ञातं सत्स्ववृत्तितयेष्यते स पुरुषार्थ इति तल्लक्षणात् इतरेच्छानधीनेच्छाविषयत्वमिति फलितोऽर्थः।

कत्वज्ञानस्य चिकीर्षां प्रति हेतुत्वं बलवदनिष्टाजनकत्वज्ञानं चिकीर्षाकारणं कस्यचिन्मत इत्यर्थः । तेनेष्टसाधनेऽपि वृष्ट्यादौ कृतिसाध्यताज्ञानाभावान्न चिकीर्षा, कृतिसाध्येऽपि कूपपतनादाविष्टसाधनताज्ञानाभावान्न चिकीर्षा, सगरलमिष्टान्नभोजने तु बलवदनिष्टसाधनताज्ञानस्य प्रतिबन्धकस्य सत्वान्न चिकीर्षा । कृतिसाध्ये इष्टसाधने बलवदनिष्टासाधने च पाकादौ चिकिर्षा सुस्था । पाकादेरपि नान्तरीयकदुःखसाधनत्वाद्बलवदित्युक्तम् ॥ ६६–६७ ॥—

**द्विष्टसाधनताबुद्धिर्भवेद्द्वेषस्य कारणम् ॥ ६८ ॥**

द्वेषं लक्षयति—**द्विष्टेति** । द्वेषः क्रोधस्तत्र द्विष्टसाधनताबुद्धिर्बलवदनिष्टजनकताज्ञानं कारणं, द्वेषोऽपि द्विधा दुःखविषयस्तदुपायविषयश्च । तत्र दुःखस्य स्वभावत एव द्वेषविषयत्वम्, उपायस्य च बलवदनिष्टसाधनत्वज्ञाने सति तत्त्वम् ॥६८॥

**प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च तथा जीवनकारणम् ॥**
**एवं प्रयत्नत्रैविध्यं तान्त्रिकैः परिकीर्तितम् ॥ ६९ ॥**

प्रयत्नं निरूपयितुं विभजते—**प्रवृत्तिश्चेति** । प्रयत्नं कृतिस्तस्य त्रैविध्यं त्रिप्रकारत्वं तान्त्रिकैः तन्त्रं शास्त्रं तद्वेदिभिः ॥ ६९ ॥

**चिकीर्षाकृतिसाध्येष्टसाधनत्वमतिस्तथा ॥**
**उपादानस्य चाध्यक्षं प्रवृत्तौ जनकं भवेत् ॥ ७० ॥**

प्रवृत्तिरूपयत्ने हेतुमाह—**चिकीर्षेति** । चिकीर्षा कृतिसाध्यत्वज्ञानमिष्टसाधनताज्ञानं कार्यसमवायिकारणगोचरप्रत्यक्षं च प्रवृत्तिहेतुरिति भावः । सगरलमिष्टान्नभक्षणादौ बलवदनिष्टानुबन्धित्वज्ञानेन चिकीर्षाप्रतिबन्धान्न प्रवृत्तिः । इष्टसाधनेऽपि वृष्ट्यादौ कृतिसाध्यताज्ञानाभावान्न चिकीर्षा, नापि तद्द्वारिका प्रवृत्तिः । कूपपतनादौ त्विष्टसाधनताज्ञानाभावान्न प्रवृत्तिः । किंचेष्टसाधनत्वकृतिसाध्यत्वज्ञानयोस्तदानीन्तनत्वं विशेषणं देयं, ततो भावियौवराज्ये बालस्य न प्रवृत्तिस्तदानीं कृतिसाध्यत्वाज्ञानात्, तृप्तस्य च भोजने न प्रवृत्तिस्तदानीमिष्टसाधनत्वाज्ञानात् । एवमुत्कटरागद्वेषादिना बलवदनिष्टानुबन्धित्वज्ञानप्रतिबन्धे चिकीर्षासत्त्वादास्तिकस्याप्यगम्यागमनशत्रुवधादौ, रोषदूषितचेतसश्च विषभक्षणादौ प्रवृत्तिः संभवीति । एवं शोकावेशेनोरस्ताडनादावपि प्रवृत्तिरुपपद्यते । एवं द्व्यणुकत्र्यणुकादौ समवायिकारणाध्यक्षानुभवाभावान्न प्रवृत्तिः । अतः काम्ये स्वर्गादीष्टसाधनत्वान्नित्यनैमित्तिकयोश्च

प्रायश्चित्तपरिहारेष्टसाधनत्वादाभिचारिके च द्वेषमहिम्नानिष्टानुबन्धित्वज्ञानप्रतिबन्धात्प्रयागादिमरणे च स्वर्गादीष्टभोगसाधनत्वात्प्रवृत्तिः संजायतीति ॥ ७० ॥

**निवृत्तिस्तु भवेद्द्वेषाद्द्विष्टसाधनताधियः ॥**

निवृत्तिरूपयत्ने हेतुमाह—**निवृत्तिरिति**। द्विष्टसाधनताधियो बलवदनिष्टानुबन्धित्वज्ञानाज्जाताद्द्वेषादनिष्टसाधनेभ्यो निवृत्तिर्भवति। तथा च कलञ्जभक्षणादिषु वेदेनानिष्टसाधनत्वे ज्ञापिते शास्त्रज्ञानां ततो निवृत्तिर्जायत इत्यर्थः ॥—

**यत्नो जीवनयोनिस्तु सर्वदातीन्द्रियो भवेत् ॥ ७१ ॥**
**शरीरे प्राणसंचारे कारणं तत्प्रकीर्तितम् ॥**

तृतीयं यत्नमाह—**यत्न इति**। जीवनस्य योनिः कारणं जीवनहेतुभूतो यत्नः, स चातीन्द्रियः, तत्र मानमाह—**शरीरेति**। अधिकश्वासादिरूपप्राणसंचारस्य धावनादियत्नसाध्यत्वदर्शनेन सहजप्राणसंचारस्यापि यत्नसाध्यत्वमनुमीयते। तत्र प्रत्यक्षयत्नस्तु नोपलभ्यतेऽतोऽत्र यत्नोऽतीन्द्रियः ॥ ७१ ॥—

**अतीन्द्रियं गुरुत्वं स्यात्पृथिव्यादिद्वये भवेत् ॥ ७२ ॥**
**अनित्ये तदनित्यं स्यान्नित्ये नित्यमुदाहृतम् ॥**
**तदेवासमवायि स्यात्पतनाख्ये तु कर्मणि ॥ ७३ ॥**

गुरुत्वं लक्षयति—**अतीन्द्रियमिति**। प्रत्यक्षतो दृष्टेऽपि घटादौ गुरुत्वानवगमादतीन्द्रियम्। पृथिव्यादिद्वये पृथिवीजलवृत्ति। अनित्ये द्व्यणुकादौ, नित्ये परमाणौ, तदेव गुरुत्वं पतनाख्ये कर्मण्यसमवायिकारणं स्यात्। द्वितीयपतनादौ क्रियाया असमवायित्वात्प्रथमे इति बोध्यम्। आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वमित्यर्थः ॥ ७२—७३ ॥

**सांसिद्धिकं द्रवत्वं स्यान्नैमित्तिकमथापरम् ॥**
**सांसिद्धिकं तु सलिले द्वितीयं क्षितितेजसोः ॥ ७४ ॥**
**परमाणौ जले नित्यमन्यत्रानित्यमिष्यते ॥**
**नैमित्तिकं वह्नियोगात्तपनीयघृतादिषु ॥ ७५ ॥**
**द्रवत्वं स्यन्दने हेतुर्निमित्तं संग्रहे तु तत् ॥**

द्रवत्वं निरूपयति—**सांसिद्धिकमिति**। आद्यस्यन्दनासमवायिकारणं

द्रवत्वं, तद्विभाग एकं सांसिद्धिकं द्वितीयं नैमित्तिकम् तच्च पृथिव्यप्तेजोवृत्ति, तत्र विभागः सलिले जले सांसिद्धिकं, क्षितितेजसोः पृथिव्यग्न्योर्द्वितीयं नैमित्तिकम् । पुनस्तद्विभजते—**परमाणाविति** । परमाणुरूपे जले द्रवत्वं नित्यमन्यत्र कार्यरूपे जले सर्वत्र पृथिवीतेजसोश्चानित्यं द्रवत्वमिष्यते । पृथिवीतेजसोर्द्रवत्वं नैमित्तिकमित्युक्तं तदुपपादयितुं नैमित्तिकपदस्यार्थमभिधत्ते—**नैमित्तिकमिति** । वह्नियोगादग्निसंयोगाद्यज्जायते द्रवत्वं तन्नैमित्तिकमित्युच्यते । तच्च **तपनीयघृतादिषु** सुवर्णरजतादिरूपे तेजसि, घृतजतुप्रभृतिषु पृथिव्यां च वर्तत इत्यर्थः । स्यन्दने द्रवणे हेतुरसमवायिकारणं, संग्रहे सक्तुकादिचूर्णपिण्डीभावलक्षणे निमित्तकारणं, तत्र तु स्नेहोऽसमवायी ॥ ७४—७५ ॥—

**स्नेहो जले स नित्योऽणावनित्योऽवयविन्यसौ ॥ ७६ ॥**
**तैलान्तरे तत्प्रकर्षाद्दहनस्यानुकूलता ॥**

स्नेहं लक्षयति—**स्नेह इति** । चूर्णादिपिण्डीभावासमवायिकारणं गुणः स्नेहः । स च जले, जलमात्रवृत्तिरित्यर्थः । तद्विभागः, स स्नेहोऽणुरूपे जले नित्यः, असौ स्नेहोऽवयविनि कार्यरूपे द्व्यणुकादिजले त्वनित्यः । ननु स्नेहो जलमात्रवृत्तिरित्युक्तमयुक्तं घृततैलादौ पृथिव्यामपि तदुपलम्भात् । न च तदन्तर्गतजलस्यैव स इति वाच्यं, तथात्वे जलाग्न्योः परस्परं विरोधात्तैलादिना वह्न्युपशमप्रसङ्गादित्याशंक्याह—**तैलान्तर इति** । तैलमध्ये उपलभ्यमानः स्नेहोऽपि जलीय एव, परं तु तत्प्रकर्षात्स्नेहाधिक्याद्दहनानुकूलता । अपकृष्टस्नेहस्य सलिलस्याग्निविनाशकत्वादुत्कृष्टस्नेहं तैलादि न दहनप्रतिकूलमिति भावः ॥ ७६ ॥—

**संस्कारभेदो वेगोऽथ स्थितिस्थापकभावने ॥ ७७ ॥**

संस्कारं विभजते—**संस्कारभेद इति** । संस्कारस्त्रिधा वेगः स्थितिस्थापको भावना चेति ॥ ७७ ॥

**मूर्तमात्रे तु वेगः स्यात्कर्मजो वेगजः क्वचित् ॥**

तत्र वेगः परिच्छिन्नपरिमाणवद्द्रव्यमात्रवृत्तिः । स च द्विधा कर्मजो वेगजश्च । तत्राद्यः शरादौ, नोदनजनितकर्मणा तत्र वेगजननात् । द्वितीयस्तु वेगवत्कपालारब्धे घटे । तत्र घटवेगं प्रति कपालवेगोऽसमवायी ॥—

स्थितिस्थापकसंस्कारः क्षितौ केचिच्चतुर्ष्वपि ॥७८॥
अतीन्द्रियोऽसौ विज्ञेयः क्वचित्स्पन्देऽपि कारणम् ॥

द्वितीयं संस्कारं निरूपयति—**स्थितीति**। अन्यथाकृतस्य पुनः पूर्वावस्थापादकः स्थितिस्थापकः। स च **क्षितौ** पृथिवीमात्रवृत्तिः। वृक्षादेराकृष्टशाखादौ प्रसारितपटादावृजूकृतश्वलाङ्गूलादौ च तथा दर्शनात्। केचिदन्ये वादिनश्चतुर्षु पृथिव्यप्तेजोवायुषु स्थितिस्थापकः संस्कारो वर्तते इत्याहुः। स च स्थितिस्थापकोऽतीन्द्रियश्चक्षुरादिभिरगम्यत्वादनुमानगम्यः। क्वचिदाकृष्टशाखादौ स्पन्देऽपि कारणं निमित्तं भवतीत्यर्थः ॥ ७८ ॥—

भावनाख्यस्तु संस्कारो जीववृत्तिरतीन्द्रियः ॥ ७९ ॥
उपेक्षानात्मकस्तस्य निश्चयः कारणं भवेत् ॥
स्मरणे प्रत्यभिज्ञायामप्यसौ हेतुरुच्यते ॥ ८० ॥

तृतीयं संस्कारं निरूपयति—**भावनाख्य इति**। जीववृत्तिः जीवाश्रयः ईश्वरीयज्ञानस्य नित्यतया ध्वंसाभावेन नेशस्य संस्काराधारता। अतीन्द्रियः न सुखादिवन्मानसप्रत्यक्षविषयः किंतु स्मृत्यादिकार्यलिंगगम्यः। तस्य हेतुमाह—**उपेक्षेति**। संशयस्थले उपेक्षास्थले च स्मृत्यदर्शनादुपेक्षानात्मको निश्चय इत्युक्तम्। तस्य संस्कारस्य कारणं जनक इत्यर्थः। तस्य कार्यमाह—**स्मरण इति**। स्मरणे केवलः, प्रत्यभिज्ञायामिंद्रियार्थसंनिकर्षादिसहकृतश्च समुद्बुद्धः संस्कारो हेतुरुच्यते। पूर्वानुभवस्य नष्टत्वेन विना संस्काररूपमवान्तरव्यापारं स्मृत्याद्यनुत्पत्तिप्रसङ्गादिति भावः ॥ ७९—८० ॥

धर्माधर्मावदृष्टं स्याद्धर्मः स्वर्गादिकारणम् ॥
गङ्गास्नानादियागादिव्यापारः स तु कीर्तितः ॥८१॥
कर्मनाशाजलस्पर्शादिना नाश्यस्त्वसौ मतः ॥

अदृष्टं निरूपयितुमदृष्टपदार्थमाह—**धर्माधर्माविति**। उभौ गुणावदृष्टशब्देन संगृहीतावित्यर्थः। तत्र धर्मं दर्शयति—**धर्म इति**। स्वर्गपदं सुखमात्रोपलक्षकम्। आदिपदेन तत्तत्सुखोचितसाधनसामग्री ग्राह्या। तस्या अपि धर्मकार्यत्वात्। ननु दर्शादियागवशेनैव स्वर्गादिसिद्धेः कृतं धर्मेण तत्राह—**गङ्गेति**। आदिपदेनेतर-

पुण्यतीर्थस्नानपानसेवनादि गृह्यते । यागादीत्यादिना होमदानादिसत्कर्मग्रहः गंगास्नानादिकर्मणां चिरध्वस्ततया स्वर्गादिजननाशक्ततया तदर्थं धर्माख्यव्यापारोऽपूर्वपदाभिधेयः कल्प्यते । ननु यागादेः कालान्तरभाविस्वर्गादिजनने स्वध्वंस एव व्यापारोऽस्तु, नच फलानन्त्यप्रसंगः, कालविशेषस्य सहकारित्वादत आह—**कर्मनाशेति** । कर्मनाशा नदी तज्जलस्पर्शेन स्वमुखकीर्तनादिना निषिद्धकर्माचरणेन वा धर्मो विनश्यतीति शास्त्रे प्रसिद्धं, तत्र यदि धर्माख्यमपूर्वं न स्यात्तदा कर्मनाशाजलस्पर्शादिना किं विनश्येत् । यागादिकर्मणः प्रागेव विनष्टत्वात्, ध्वंसस्य च नित्यत्वादित्यपूर्वमभ्युपेयम् ॥ ८१ ॥–

**अधर्मो नरकादीनां हेतुर्निन्दितकर्मजः ॥ ८२ ॥**
**प्रायश्चित्तादिनाश्योऽसौ**

अधर्मं लक्षयति—**अधर्म इति** । नरकपदं दुःखमात्रोपलक्षकम् । आदितस्तद्भोगोचितसामग्रीग्रहः । नरकादिदुःखसाधनं शास्त्रप्रतिषिद्धकर्माचरणजन्योऽपूर्वविशेषोऽधर्म उच्यते । तत्र मानमाह—**प्रायश्चित्तेति** । प्रायश्चित्तेनाधर्मो विनश्यतीति शास्त्रे प्रसिद्धं, तत्र यद्यधर्माख्यमपूर्वं न स्यात्तदा प्रायश्चित्तेन प्रबलपुण्येन भोगेन वा किं विनश्येत् । ब्रह्महननादिचेष्टायाः प्रागेव विनष्टत्वात्, ध्वंसस्य चानन्तत्वादित्यपूर्वमूरीकार्यम् ॥ ८२ ॥–

**जीववृत्ती त्विमौ गुणौ ॥**
**इमौ तु वासनाजन्यौ ज्ञानादपि विनश्यतः ॥ ८३ ॥**

अनयोराश्रयमाह—**जीववृत्ती त्विति** । ईशे धर्माधर्मौ न स्त इति भावः । तत्र हेतुः **इमाविति** । ईशे तु जन्यज्ञानाभावेन वासनाऽसंभवान्नानयोः सत्त्वमिति भावः । तयोर्नाशे हेतुमाह—**ज्ञानादपीति** । अपिशब्देन भोगस्य प्रायश्चित्तस्य प्रबलकर्मणश्च ग्रहः । प्रारब्धस्य भोगादेव तदितरयोस्तु[१] ज्ञानादितो विनाश इति भावः ॥ ८३ ॥

---

१ संचितक्रियमाणयोः ।

**शब्दो ध्वनिश्च वर्णश्च मृदङ्गादिभवो ध्वनिः ॥**
**कण्ठसंयोगादिजन्या वर्णास्ते कादयो मताः ॥ ८४ ॥**
**सर्वः शब्दो नभोवृत्तिः श्रोत्रोत्पन्नश्च गृह्यते ॥**

शब्दं निरूपयति—**शब्द** इति। शब्दो द्विधा, ध्वनिरूपो वर्णरूपश्च। तत्राद्यो मृदङ्गादिजनितः शब्दः, कण्ठताल्वादिसंयोगजः शब्दो वर्णरूपः। तत्र वर्णानाह—**वर्णा** इति। ते वर्णाः कादयः ककारादयः क्षकारान्ता इत्यर्थः। शब्दस्याश्रयमभिदधाति—**सर्वं** इति। सर्वः शब्दो ध्वनिरूपो वर्णरूपश्च प्रथमो मध्योऽन्तिमश्चापि नभोवृत्तिराकाशसमवेतः। प्रथमादिशब्दाग्रहे हेतुमाह—**श्रोत्रोत्पन्न** इति। श्रोत्रस्य शब्दग्राहकेन्द्रियत्वात्प्रथमादिशब्दानां च तेनासन्निकर्षादग्रहणम्। अन्त्यशब्दस्यैव तत्रोत्पन्नस्य तेन सन्निकर्षाद्ग्रहणमिति ॥८४॥—

**वीचीतरङ्गन्यायेन तदुत्पत्तिस्तु कीर्तिता ॥ ८५ ॥**

ननु मृदङ्गादिदेशोत्पन्नस्य शब्दस्य कथं श्रोत्रदेशे समुत्पत्तिरित्याकाङ्क्षायां तत्प्रकारमभिभाषते—**वीची**ति। यथा जले कपालिकाशर्करादिप्रक्षेपे वायुना क्षोभे च सति वीची जायते ततो वहिर्दिगवच्छिन्नस्तरङ्गस्ततोऽपि वहिरन्यस्तरङ्गो जायते, एवं करादिना मृदङ्गादौ ताडिते प्रथमः शब्दो जायते। ततो मृदङ्गवहिर्दिगवच्छिन्नोऽन्यः शब्दस्ततोऽपि वहिरन्य एवं शब्दपरम्परया श्रोत्रेऽन्त्यः शब्दः समुत्पद्यते ॥ ८५ ॥

**कदम्बगोलकन्यायादुत्पत्तिः कस्यचिन्मते ॥**

मतान्तरमाह—**कदम्बे**ति। यथा कदम्बमुकुलाद्दशदिग्व्यापीनि दशमुकुलान्तराणि जायन्ते ततोऽपि तादृशानि मुकुलान्तराणीति तथा मृदङ्गादिदेशोद्भूतप्रथमशब्दाद्दश दिक्षु दश शब्दा जायन्ते तेभ्यश्चान्ये दश तेभ्यश्चान्ये एवं, श्रोत्रदेशेऽन्त्यशब्दो जायते। तत्र प्रथमशब्दे मृदङ्गकरादिसंयोगो निमित्तं, मृदङ्गाकाशसंयोगस्त्वसमवायी, द्वितीयशब्दे तु प्रथमशब्दस्यासमवायित्वं तृतीये द्वितीयस्य, आकाशस्तु सर्वत्र समवायी, विभुविशेषगुणस्य स्वोत्तरगुणनाश्यत्वनियमेन द्वितीयः शब्दः प्रथमस्य नाशकः। एवं तृतीयो द्वितीयस्येत्यादि। अन्त्यस्तूपान्त्यं नाशयन्कतकरेणुवत्स्वयमपि विलीयते। सुंदोपसुंदन्यायेनान्त्योपान्त्ययोः परस्परविघातकत्वमित्यपरे। एवं वर्णरूपशब्देऽपि प्राणस्य कण्ठादिसंयोगो निमित्तं; कण्ठाकाशादिसंयोगोऽसमवायीत्याद्यूह्यम् ॥—

**उत्पन्नः को विनष्टः क इति बुद्धेरनित्यता ॥ ८६ ॥**

ननु शब्दस्य नित्यत्वात्कथमुत्पत्तिविनाशौ निरूप्येते इति मीमांसकाशङ्कामातङ्कयति—उत्पन्न इति । शब्दानामुत्पादविनाशावनुभवसिद्धौ इत्यर्थः ॥८६॥

**सोऽयं क इति बुद्धिस्तु साजात्यमवलम्बते ॥**
**तदेवौषधमित्यादौ सजातीयेऽपि दर्शनात् ॥ ८७ ॥**

## इति न्यायकारिकावली समाप्ता.

ननु य एव ककारो देवदत्तेनावोचि स एव यज्ञदत्तेनापीति प्रतीतेः शब्दस्य नित्यत्वमवगम्यते तत्कथमनित्यतयोत्पादविनाशत्ववर्णनं वर्णानामित्यत आह—**सोऽयमिति** । साजात्यं समानजातीयत्वं सादृश्यमिति यावत् । तथाच सादृश्यनिबन्धना सा प्रतीतिर्न नित्यत्वं साधयितुं क्षमत इत्यर्थः । **तत्रोदाहरणमाह—तदेवौषधमिति** । यदेव चैत्रेणौषधमसेवि मैत्रेणापि तदेवौषधं सेव्यत इत्यादौ यथा भिन्नेप्यौषधे साजात्यमात्रावलंबिनी तादृशप्रतीतिर्दृश्यते तथात्रापीति सर्वमवदातम् ॥ ८७ ॥

नमामि पञ्चाननविश्वनाथपादारविन्दद्वयमादरेण ॥
सिद्धान्तमुक्तावलिकेह येन सुगुंफिता विश्वविलासहेतोः ॥ १ ॥

एतस्य कण्ठाभरणस्य नूनं संधारणोद्भूतपटुत्वशक्तिः ॥
मुक्तावलीं धारयितुं क्षमः स्यात्सर्वोऽपि बालस्त्विति मे मनीषा ॥ २ ॥

मुक्तावलीमुक्तिनिकायमध्यादुद्धृत्य युक्तीः सुगमा मयेदम् ॥
अगुंफि कण्ठाभरणं सुरम्यं व्युत्पित्सुकण्ठाभरणं भवेत्तत् ॥ ३ ॥

श्रीगुरुपादसरोरुहयुगलं प्रणमामि मूर्ध्नाहम् ॥
यत्कृपया हि पुमर्थाः सर्वे सुलभीभवन्ति नृणाम् ॥ ४ ॥

इति श्रीलवपुरवासिडिंगणज्ञातीयद्विजराजिविराजमानश्रीकृष्णकौरमिश्रसुतदेवीसहायगुंफितं कण्ठाभरणं समाप्तम् ।